कुलाचार

(भाग तीन)

★

लेखक

रामो बिरूआ

बिहार असैनिक सेवा

ग्राम- भागाबिला

जिला- सिंहभूम (बिहार)

★

प्रथम संस्करण-१९८०-१०००

कॉपीराइट-लेखक

मूल्य—५ रू०

★

मुद्रक

एसपी प्रिन्टर्स

आढ़त रोड

डालटनगंज-८२२ १०१

फोन : २४६

कुलधर्म

कोलों का एक अद्वितीय
आदिङ्ग संस्कृति (Kitchen Culture) है।

●

तृतीय भाग

★

कोलों को सस्नेह समर्पित

★

निसू सनिंग गोजेयानीः
वचर जिलिंग आडेयानीः
चकड़ आपु कजि तेपे वोंगाई ताना ॥ कों ॥
आपे ओड़ाः गोजेयानीः
होला तेर गे आडेयानीः
देला हगंज जगारेमे नोकोए वोंगाईया ॥ कों ॥

"कुलचारी रामो"

मन्तव्य

चि० प्रिय रामो,

सस्नेहाशीर्वाद !

पं० विश्वनाथ जो के मार्फत तुम्हारी पुस्तक Garland of Letters भेज रहा हूं। इसकी एक प्रति मेरे पास है। अपने पुत्र चि० राजू को Hymn to Kali माँगने के लिए कहा था। प्रकाशक से पत्र मिला कि यह out of print हो गया है। फिर विश्वनाथ आने लगे तो उनके मार्फत भेज देना। पढ़ कर वापस भेज दुंगा।

तुम्हारी लिखी अद्भूत पुस्तकों को पढ़ कर अत्यन्त आनन्द हुआ। कुलपति हरगोविन्द सिंह को भी दिया था। मुझे तुमने अपने ग्रन्थ में बड़ा ही उँचा उठाया है, जिसका मैं अधिकारी नहीं हूं। प्रशंसनीय ही नही; वरन श्लाध्य रचना है।

परम पिता तुम्हें सफलता देते रहे और यशस्वी दीर्घायू होओ। शेष कुशल है।

शुभेच्छू

मुरारी पाठक

२४-६-१९८०

भूगोल विभाग

मगध विश्वविद्यालय

बोधगया

प्राक्कथन

हम केवल धर्म की बात नहीं करते हैं ।
जैसा कि अन्य लोग अक्सर किया करते हैं ।।
हम तो उत्तम सत् धर्म की बात करते हैं ।
जिसे अन्य लोग मुश्किल से समझ पाते हैं ।।१।।

हम केवल कर्म की बात नहो करते हैं ।
जैसा कि अन्य लोग अक्सर कहा करते हैं ।।
हम तो केवल कर्त्तव्य की बात करते हैं ।
जिसे कुलाचारी सत्कर्म कहा करते हैं ।।२।।

अपने जन्म के श्रोत का पूजा हो सत्कर्म है ।
सत्कर्म का सत् धर्म ही पुत्र का स्वधर्म है ।।
स्वधर्म में पूर्वजों के प्रति जो सत्कर्म है ।
कोल पुत्र-दर-पुत्रों का यही कुलधर्म है ।।३।।

नोठ—सत्य-real है । सत्य का अंश-हम-un-real हैं । सत्य-नाम रहित है, रूप रहित है, सीमा रहित है, समय रहित है, अव्यक्त है, अवर्णनीय है ।

पर उसी अव्यक्त, अदृश्य सत्य का अंश, प्रकृति के सम्पर्क में घनीभूत होकर व्यक्त होता है, तो दृश्य होता है । जिसका रूप है । उस रूप का नाम है । और समय के द्वारा सीमित है । जैसे-हम मानव हैं । सभी अन्य जन्तु हैं ।

लेकिन हम सभी पुत्र के रूप में ही व्यक्त होते हैं । इसी कारण पुत्र के रूप में पैदा करने वाले (माता-पिता) के हम कृतज्ञ हैं । अतः पुत्र का प्रति दिन का प्रथम पूजा कृतज्ञता (gratefulness) का ही होना चाहिए । हम पुत्र, अपने जन्म के परिवार के प्रति, वंश के प्रति, एवं कुल के प्रति कृतज्ञ हैं । क्योंकि उन्हीं के सिलसिले में हैं ।

अतः उनके (कुल के) प्रति कृतज्ञता का पूजा हमारा कर्त्तव्य है । कर्त्तव्य का सत्कर्म ही पुत्र का स्वधर्म हैं । और पुत्र का स्वधर्म (Own-lsm) ही कुल धर्म (Gene-lsm) हैं ।

—लेखक

(V)

GENE–ISM

There is no continuity
Believe me "O, devotee"
Without Kulachara, I pity
There is no continuity.

Of your knowledge of deity
Of your earnings of piety
Without Kulachara, I pity
There is no continuity.

About your family births
With the knowledge of re-births
Without Kulachara 'O', son
You can not have realisation.

So to avoid animals death
On the path of a distinct faith
Believe me, O, dear native
There is no altenative.

There is nothing in the Universe
Except numerous spiritus
Simple to super spiritus
Under the Supreme spiritus.

So should you want my advice
I tell you from my inner voice
Please wor ship your Origin
Like that of a Kol-Aborigin.

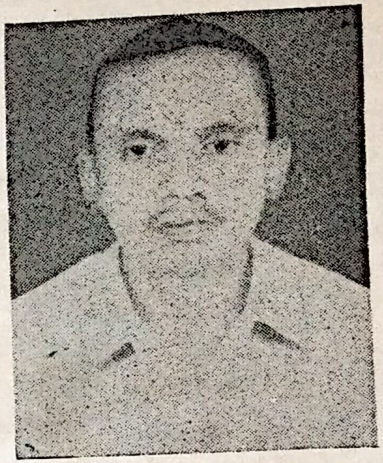

रामो विरुवा वि०प्र०से०
बी० ए० (आनर्स) एम० ए०
अंलच अधिकारी
बरवाडीह (पलामू)
बि हा र
१६-२-१९८०

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं०
१	कुल धर्म	१
२	समर्पण	२
३	प्राक्कथन	३
४	आत्मचिन्ता	४
५	महत्वकांक्षा	१२
६	पैरवी	१५
७	आवेदन	१७
८	निर्भरता	१६
९	शिकायत	२१
१०	अयोग्य	२३
११	आकर्षण योग	२४
१२	आदिवासी	२६
१३	उलझन	३०
१४	समय की पूजा	३१
१५	गुण बखान	३२
१६	दावी	३५
१७	Actual Truth	४२
१८	आदमी	४५
१९	ब्रह्म रूप	४६
२०	रोजा	४७
२१	रोज	४८
२२	अपना सम्मान	४९
२३	अता पता	५०
२४	मुहुर्त	५०
२५	हरिजन और मन्दिर	५३
२६	ग्रहण	५६
२७	प्रेमिका से	५९

२८	अकेला	६४
२९	Question	६५
३०	नारी	६६
३१	चिन्तन	६८
३२	धार्मिक लक्ष्यों की सीमा	७२
३३	सिद्धान्त	७८
३४	सत्य एवं तथ्य की खोज	८१
३५	सम्पूर्ण कुल	८३
३६	कुल शब्द की उत्पत्ति	८९
३७	अज्ञेय के रूप परिवर्तन	९३
३८	प्रगट रूपों का अन्तर	९६
३९	प्रमुख रास्ते	९९
४०	तरीके	१०२
४१	पूजा	१०३
४२	अदृश्य शक्तियां	१०९
४३	मन्त्र	११२
४४	गायत्री मन्त्र	११५
४५	सविता के सृष्टि का रहस्य	११७
४५	हम कैसे आते हैं	१२०
४६	Sons and Co.	१२३
४७	Kulachari	१२४
४८	कुलार्णव	१२६
४९	आत्म सम्मान	१३८
५०	सच्ची शिक्षा	१४७
५१	अच्छी शिक्षा	१४८

कुलधर्म

अन्य धर्मों के मुकाबिले

कु ल यो ग

(GENEALOGICAL UNION)

का उत्तम मर्म है ।

इस लोक में,

सूर्य के प्रकाश में,

अपने लोगों को आप पहचानते हैं,

उस लोक में,

किसके प्रकाश में,

निज पूर्वजों को आप पहचानेंगे ?

कुल प्रकाश के सिवा

अन्य प्रकाश नहीं है ।

दिव्य प्रकाश के सिवा

अन्य प्रकाश नहीं है ।

रोशनी को देखकर जैसे फतिंगे झपट पड़ते हैं ।
दिव्य प्रकाश को देखकर वैसे योगी टूट पड़ते हैं ॥

दिव्य प्रकाश ही को देख पाना जितना आनन्दायक है ।
प्रकाश वन प्रकाश में विलीन होना तो मुक्तिदायक है ॥

नोट-प्रकाश=Own spiritual light, दिव्य प्रकाश=Divine Light, योगी से मतलब-कुलयोगी ।

हरि ओम

० ० ०

बाल
ब्रह्मचारी
महा
कुलाचारी
पूज्य चाचा स्व० परदान बिरुवा को
भक्ति पूर्वक समर्पित

० ० ०

पिता :—तुम्हारे चाचा के कोई नहीं है। उनको अंतिम समय तक तकलीफ नहीं होना चाहिये।

पुत्र :—वैसा ही होगा।

साक्षी :—बिलकुल ही मौन साक्षी माँ थी।

अंत :—वैसा ही हुआ। हुक्म तामील हुआ।

० ० ० ० ० ० ० ० ०

आप उनके हैं, सब कुछ उनका है
जीवित रहना भी मर्जी यहां उनका है
ऐसी समझदारी ही बुद्धिमानों का है ॥१॥

ऐसी दशा में लेना भी जब तिनका है
पाना अनुमति आवश्यक उनका है
सारी सृष्टि हमारे समक्ष जिनका है ॥२॥

बात मानिए ये उपदेश देवों के हैं
वैसा नहीं करना ही काम चोरों का है
और इसी बात ही डर कोलों का है ॥३॥

० ० ० ० ० ० ० ० ०

चाचा जी सृष्टि से कुछ नहीं लिए
किन्तु देने वाले ने, उनको,
मुर्गा आत्मा का सवारी दिए

प्राक्कथन

आपके बिखरे ख्यालों को, स्थूल संसार (gross world) से सूक्ष्म एवं अदृश्य (subtle invisible) संसार की ओर मैं ले जाना चाहता हूँ। आकर्षित कर लेना चाहता हूँ। अपने वचनों के प्रभाव से, अपने लेखनी के प्रभाव से मैं वैसा कर लेना चाहता हूं।

क्या—आप क्षणिक संसारिक सुखों में भटकते अपने ख्यालों को बटोर कर ध्यान (meditation) में बदलना पसन्द नहीं करेंगे ?

क्या—उसे स्थूल ससार से सूक्ष्म संसार में केन्द्रीभूत (concentrate) करना पसन्द नहीं करेंगे ?

आपके ध्यान को सूक्ष्म संसार में ले चलने के लिए ही मैंने इतना प्रयास किया है। खुद आपके संबंध का ज्ञान, आप में ही जगाने के लिए अपने अनुभवों को लिपिबद्ध कर एक पुस्तक की रचना की है। खुद अपने संबंध का ज्ञान के आगे, अपने परिवार के, अपने वंश के, अपने कुल के स्वजनों के स्थूल एवं सूक्ष्म संसार का कुल ज्ञान भी खुद आपके पास ही रहे, ऐसा उपयुक्त समझ कर, प्रत्येक पुत्र के लिए, मैंने "कुलाचार" की रचना की है।

आपकी भावनाओं को स्वतः प्रोत्साहन मिले, इसकी मैं तहेदिल से कामना करता हूँ। आप नहीं भी चाहें, तो पर भी स्वतः ही आप प्रोत्साहित हो जाएँ, प्रभावित हो जाएँ, ऐसा संभव हो सकने योग्य, खास आपके लिए ही मैं कामना करता हूं।

उम्मीद है कि आपके मामले में मेरा यह प्रयास विफल नहीं जायगा।

विनीत—
लेखक

"आत्मचिंता"

दूसरों के बुढ़ापा को देखकर, दूसरों के सामयिक एवं असामयिक मृत्यु को देखकर, मुझको, अपने ही उम्र की चिंता हो गई। सोचा–कि मृत्यु तो मृत्यु है, उसकी क्या परवाह ? यह तो होना ही है।

लेकिन शारीरिक मृत्यु के बाद मुक्त (bodyless) आत्मा का क्या होगा ? मैं आत्मा के रुप में कहां रहूँगा ? इसका पता किनको होगा ?

मेरा पुनर्जन्म तो होगा। पर कहां होगा ? किसके घर में होगा ? फिर इस पुनर्जन्म का परस्पर सम्बन्ध कैसे स्थापित होगा ? अगर पुनर्जन्म नहीं हुआ तो इस मेरे शरीर के आत्मा का क्या नतीजा होगा ? इतनी ऐसी बातों की चिंता हो गयी।

किन्तु पुनर्जन्म की बात बतलाते हुये, अकस्मात एक दिन सन १९६० में एक गरीब सज्जन ने, सिरवला जिला–गया में अपने आप ही मुझे बताया था, कि इस जन्म के पूर्व के जन्म में, आप एक राजा थे। किन्तु एक यज्ञ में आपसे एक गलती हो गई। आपने अकारण ही एक साधु को अपमान किया था। उसी कारण ही, आपको, इस जन्म में फिर आना पड़ा है। किन्तु इस जन्म के बाद आगे, आपका कोई जन्म ही नहीं है। यह सुनकर मुझे चिंता हो गई।

इसके बहुत दिनों के बाद सन १९७२ में गया में, महल्ला रमना के एक पंडित, जिसने एक कूल का नाम उच्चारण करने के क्षण के हिसाब से, मेरी जन्म कुण्डली बनायी थी, में भी उसी बात कि, "तेरा इस जन्म के बाद अगला कोई जन्म नहीं है," को ही दुहराया था। इससे, अपने घर में ही पुत्र–दर–पुत्रों के सिलसिले में फिर से जन्म लेने की मेरी आशा ही खत्म हो गई।

प्रतिदिन की यह चिंता कि इस जन्म के बाद, अगला कोई जन्म नहीं है, ने मुझको, शारीरिक मृत्यु के बाद, आत्मिक जीवन की अगली पारलौकिक स्थिति को इसी जिन्दगी में जान लेने के लिये जबर्दस्त रुप से मजबूर कर दिया।

इस जन्म में अबतक मुझको बहुत सेवायें मिलीं। बचपन से सयाना होने तक, माता–पिता का लालन–पालन का स्नेहपूर्ण सेवायें मिली। किशोरावस्था में गुरुजनों का प्यारयुक्त शिक्षायें मिली। गृहस्थाश्रम में, पत्नि का प्रेमपूर्ण सेवायें मिली। फिर अनुचरों के भक्तियुक्त सेवायें मिली। इन सेवाओं से शरीर सहित आत्मा को बहुत सन्तुष्टि मिली।

किन्तु वन प्रस्थाश्रम के आगे–मृत्यु के बाद–क्या होगा ? शरीर को गाड़ा गया तो मिट्टी में मिल जायगा। शरीर को जलाया गया तो धूआं बनकर हवा में उड़ जायगा। किन्तु इस शरीर के अवशेष अमर आत्मा का क्या होगा ? इसकी सेवा कौन करेगा ? इसकी सेवा किस प्रकार होगी ? कुछ धर्मावलंबी कहते हैं कि मरने के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष तो मुझे मिलता ही है। कुछ धर्मावलम्बी कहते हैं कि मृत्यु के बाद भवसागर (जन्म पुनर्जन्म की आवृति) को पार करते हैं। और प्रभु होने से परे) हो जाते हैं। यह भी होता है। कुछ धर्मावलम्बी कहते हैं कि मरने के बाद स्वर्ग को जाते हैं। स्वर्ग जाऊँ या नरक जाऊँ। शरीर से तो जाऊँगा ही। ये सब बातें तो अपनी जगह पर ठीक है।

पर मेरे विचार से, किसी भी हालत में, यह तो नहीं है कि मोक्ष की प्राप्ति के बाद भवसागर को पार करने के बाद, स्वर्ग

या नरक में जाने के बाद, आत्मा तुरन्त लुप्त हो जायगा या तुरन्त नष्ट हो जायगा या ईश्वर तत्व में घूलमिल जायगा।

अगर नहीं, तो वैसी हालत में तबतक मेरी आत्मा का क्या होगा? कौन उसकी सेवा करेगा? कैसा सेवा मिलेगा? कहीं त्यक्त (abandoned) आत्माओं की तरह दिशाहीन एवं आश्रयहीन तो नहीं भटकेगा?

कुछ दिनों के लिये ये अवश्य ही मेरी कठिन से भी कठिन समस्या थी और मैं इन समस्याओं के समाधान की चिंता में डुबा रहता था। इन्ही चिंताओं में दिन और रात की सीमायें मिट गई थी। शरीर के भोजन की चिंता मिट गई थी। इस संसार की चिंता मिट गई थी। केवल इस शरीर की जिंदगी के आगे, शरीर से मुक्त मेरे आत्मा (जीव) के जीवन की ही चिंता थी। मेरे आत्मा (जीव) का क्या होगा? सोच सोच कर आंसू लबालब भर आता था।

मैंने वर्तमान में प्रचलित संसार के पृथक-पृथक धर्मों के आचारों का अध्ययन किया। उन धर्मों से अनुयायियों को प्राप्त होने वाले शुभ एवं अशुभ लाभों का अध्ययन किया।

उन धर्मों में मैंने देखा कि अनुयायी लोग, यहां तक कि धर्मों के गुरु भी, शारीरिक मृत्यु के बाद अपने आत्मा (जीव) के जीवन की कुछ भी परवाह नहीं करते हैं। अपने जीव के अलावे, अपने ही दिवंगत सम्बन्धी पित्तर जीवों तक की सेवा सुश्रुषा के लिए वे कुछ भी परवाह नहीं करते हैं। यह तो संयम नियम की पवित्र साधना के द्वारा ही सम्भव हो सकता है, जो कठिन है, शायद इसी कारण ही वे पसन्द नहीं करते हैं। इससे

वे धर्म तो मात्र एक संस्था ही मालुम पड़ते हैं और इनके अन्दर के क्रिया-कर्म मामूली एक तमाशा मात्र ही मालूम पड़ते हैं।

प्रत्यक्ष में वे तो, गैर-सम्बन्धी, एक गुरु को ही मानते हैं। उन्हीं का आज्ञा-पालन करते हैं और अप्रत्यक्ष में, उनके आगे उनके द्वारा ही, सुदूर अतीत (distant past) के किसी गैर-सम्बन्धी, अवतारी, पैगम्बर, ईश्वर-पुत्र एवं तपस्वी जीव की ही वन्दना (worship) करते हैं। इस तरह से वे अपना तो कुछ नहीं वरन उन्हीं का ही सब कुछ परवाह करते हैं और ऐसा करके उनसे मुहमांगा आशीर्बाद पाते रहने का वे आशा करते हैं। उनसे ही अपना अपने परिवार का संरक्षण पाते रहने का एवं सुख समृद्धि पाते रहने का वे आशा करते हैं। इतना ही नहीं, यहां तक कि मृत्यु के बाद पापों को क्षमा करने एवं गन्दा हृदय को धोकर स्वर्ग में पहुंचाने का भी वे आशा करते हैं।

मैं देखकर अचम्भा में पड़ जाता हूँ कि वे, उनसे उतने तरह की सेवा पाने की तो आशा करते हैं, पर उनकी सेवा के बदले में अपनी सेवा उनको कुछ भी नहीं देते हैं। भक्त की सेवा तो, उन तक, पवित्र भोग अर्पणों के द्वारा ही सम्भव है। अरे वाह, वे, अपने तो मजे से खाते हैं, पर जिन महान जीवों से वे आशा करते हैं, उन्हें वे कुछ नहीं देते हैं। मात्र उनका प्रार्थना भर करते हैं।

ऐसे में उनको (ईष्ट महान जीवों को) सेवा दिए बिना ही उनसे सेवा लेना या सेवा के लिए याचना करना, मुफ्त सेवा की याचना (crave) करने के बराबर ही है। यह क्या जाने कैसा तो लगता है।

लेकिन जब पृथक धर्मों के अनुयायी बिना हिचक दोनों हाथ फैलाकर याचना करते रहते हैं तो, ऐसा मालुम होता है कि वे अवतारी, पैगम्बर, ईश्वरपुत्र एवं तपस्वीजीव, को शायद एक आज्ञाकारी सेवक ही समझते हैं या एक मेहरबान दाता ही समझते हैं। वे सोचते है कि मात्र उनकी प्रार्थना कर दिया कि वे अब उनकी मनसा (desire) पूरी कर देंगें।

कितना सरल, कितना सस्ता, वे अवतारी पैगम्बर, ईश्वर-पुत्र एवं तपस्वी जीव को समझते हैं, सोचने की बात है। पर यह, मुझको पसन्द नहीं आया।

उन्हें मुफ्त याचना के एवज में उनसे कुछ लाभ प्राप्त होते होंगे। वे लाभ उनको जिंदगी के लिए उपयोगी होते होंगे। किन्तु मुझको याचना की जिंदगी, मुहताज होने की जिंदगी जैसा मालुम हुआ।

भले ही इस जिंदगी में कुछ लाभ मिल जाए। पर ऐसी याचनाओं से जीव को जीवन में लाभ होगा, सन्देहास्पद ही है। क्योंकि शारीरिक मृत्यु के बाद जीव को लाभ मिले भी तो वह कैसे प्रमाणित होगा कि जीव को लाभ मिला, इसका पता किनको होगा

क्या-उनके उत्तराधिकारीपुत्र को मालुम होगा? नहीं। जहां तक मुझको मालुम है, उन धर्म के पुत्रों को अपने दिवंगत पिता के जीव का फिर से कभी दर्शन नहीं हो पाता है। वरन उन्हें पता तक नहीं रहता है। ऐसी हालत में पिता जीव के जिंदगी भर की याचनाओं के लाभ के बारे में उन्हें मालुम ही क्या हो सकता है?

यह बात सही है, कि संसार में, अवतारी, पैगम्बर एवं

ईश्वर-पुत्र एवं तपस्वी जीवों को पृथक-पृथक धर्मों में बन्दना की जाती है। पर इन धर्मों के अनुयायियों के जीवों का क्या होगा? उनके मरने के बाद उनके आत्मा (जीव) की बन्दना कौन करेगा? उसी प्रकार मेरे शारीरिक मृत्यु के बाद मेरे जीव (आत्मा) की पूजा कौन करेगा?

बहुत-बहुत चिन्तनों के बाद देवी की कृपा से जो हल मिला उसके मुताबिक उन समस्याओं का दैविक समाधान यही होता है कि—दम्पति के मामले में—

पति के लिये—पति जीव का पुजारिन पत्नि को ही उनके मरने तक होना चाहिये।

पत्नि के लिये—पत्नि जीव का पूजारी पति का ही, उनके मरने तक होना चाहिये।

माता-पिता के लिये—मां जीव या पिता जीव का पूजारी जिंदगी भर के लिये उनके ही पुत्र एवं पुत्री को होना चाहिए।

परिवार में, वंश में, कुल में, दिवंगतों के आत्माओं का पूजा का सिलसिला इसी प्रकार ही होना चाहिये। और पीढ़ी-दर-पीढ़ी के जन्म पुनर्जन्म के चक्र में ऐसी कुल पूजा ही होना चाहिये। ऐसा कुल ज्ञानी (कुलज्ञ) प्रत्येक चिता का अपने कुल के लिये होना चाहिये। और यह ज्ञान जीवित रहते अपने सयाना पुत्र को सिखा जाना चाहिये। जिससे कि पुत्र जिनदी भर पिता जीव की अपने घर में ही अपने से पवित्र भोग अर्पण के साथ सुबह शाम पूजा कर सकें। खुद किस्मति से युगों से मेरे कुल में कुलाचार शुद्ध रुप में कायम है। यह मुझे स्मरण हो गया। अपने पुत्र एवं पुत्री के कुलाचार की कुल परिधि में रहूँगा।

कुलाचार के कुलसागर में, तैरता रहूँगा। कहीं नहीं भटकुंगा। यह जानकर मैं सन्तुष्ट हूं। आनन्द विभोर हूं। मुझको स्वर्ग या नरक की अब चिंता नहीं है।

मैंने कुलाचार का पालन करता हुआ, अपने स्वर्गीय पिता के एवं स्वर्गीय चाचा के जीवों को देखा है। उनसे वार्तालाप भी किया है। उन्हें परलोक के विशाल सुन्दर से सुन्दर बंगला में हमेशा पाता रहता हूँ। वे मेरे पवित्र घर में आते जाते हैं। और सन्तुष्ट होकर वे लौटते हैं। और मेरे आत्मा की सुक्ष्म दृष्टि से भी वे बृहत ब्रह्माण्ड में अन्तर्धान हो जाते हैं। उनका समय समय पर दर्शन से, इस संसार की इस जिंदगी का अब भय नहीं है। और परलोक के मेरे जीव के जीवन का भी अब चिंता नहीं है।

यह मैं, अपने पुत्र को सुना जाउंगा। उसे कुलाचार सिखा जाउंगा। मैं भी, अपने पिता, चाचा एवं कुल के पिता महानों के साथ, पुत्र एवं पुत्री के कुलाचार से सन्तुष्ट रहूँगा। मुझको अब किसी प्रकार की चिंता नहीं है। क्योंकि उनकी शारीरिक एवं आत्मिक दृष्टि से मैं ओझल नहीं होउंगा।

इसके अलावे, मैंने जाना था, कि इस संसार (इस लोक) में मेरे पिता ने ही, मुझको बहुतों से परिचय कराया था। अब आगे मृत्यु के बाद उस अन्य संसार (परलोक) का सवाल ।

क्या—वहां मेरे पिता के अलावे अन्य कोई मेरा परिचय करायेंगे ? नहीं—वहां किनको मेरे लिये क्या गरज हो सकता है ? अतः मेरे पिता जी ही, उस लोक में भी, मेरा (जीव के

रुप में) परिचय करायेंगे। अपने पिता जीव को, इसी समय उस लोक में मैं पहचानता हूँ। वे मुझको पहचानते हैं। ऐसे मे यहां (इस संसार) से चलने के बाद, मैं उस संसार (परलोक) में परस्पर पहचान के कारण उन्हीं के पास पहुंचुगा। उन्हीं के संरक्षण में रहूँगा। साथ में मेरे दादा, परदादा जैसे पिता महान भी होंगे। नैसर्गिक (Earthly) घरेलू वातावरण की तरह ही स्वर्गिक (Heavenly) वातावरण भी रहेगा।

यह अनुभव होने पर मुझको कितनी खुशी होती है, मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। अतः मेरे आत्मा के दिशाहीन, आश्रय-हीन भटकने का अब सवाल नहीं है। अब न तो यम का डर है, न नर्क का डर है और न ही कयामत का ही डर है।

मुझे अब कुलाचार के लिये केवल आत्म प्रतिष्ठा की ही चिंता है। कुलाचार से कहीं भटक न जाउँ इसीका ही डर है।

अभी इसी जिंदगी में, आत्मिक रुप में, परलोक में विचरण करता हुआ मैंने उस बंगला को भी देख लिया है, जहां शरीर से मुक्त जीव के रुप में मैं अनगिनत वर्षों तक रहूंगा। क्योंकि मेरा पुनर्जन्म नहीं है।

यह बंगला वीरान से भी वीरान स्थान में, उँची टिल्हा पर एक पहाड़ी नदी के किनारे स्थित है। उसके बगल से होकर एक कच्ची सड़क नदी के ढलान में उतरती है। और नदी के पार दूर तक चली जाती है। नदी के बीच में एक नीचा पुल भी है।

उस बंगला के समीप मेरे पहुंचने के समय उपस्थित देवों ने, मेरा स्वागत किया है। और उस बंगला में रहने वाली देवी

से भी मुलाकात करा दिया है। उस बंगला के उस देवी को मैंने अच्छी तरह पहचान लिया है। जिसके साथ जीव के रुप में मुझको अनगिनत वर्षों तक रहना है।

इस प्रकार मृत्यु के बाद की मेरी सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान हो जाने के कारण, अब मुझे कोई चिंता नहीं है।

धरती का यह मेरा घर वो आंगण, और परलोक का वह घर वो आंगण, एक घर वो एक आंगण हो गया है। उन्हीं दोनों घरों में, मैं जीव आता जाता रहूँगा। और धरती के घर के मेरे उत्तराधिकारी, पुत्र एवं पुत्र-दर-पुत्रों से मैं पवित्र भोजन और पानी का भोग अर्पण पाता रहूँगा।

इसे जानकर मुझको जो खुशी हुई है, इससे बढ़कर भी क्या-और खुशी हो सकती है। .....नहीं।

ऐसी उपलब्धि क्या-कुलाचार के बिना भी सम्भव है? .....नहीं।

महत्वकांक्षा

कोई कितना ही नास्तिक क्यों न हो इतना तो उसे भी मानना होगा कि यह सृष्टि, किसी अदृश्य महाशक्तिमान (Supreme Divine Power) के द्वारा ही सम्भव हुयी है। और किसी महाशक्ति के द्वारा ही बहुत जबरदस्त रुप से प्रभावित भी है।

क्योंकि उसी महाशक्ति के बदौलत ही उस नास्तिक का भी प्रकृति के अन्दर प्राकृतिक तत्वों के साथ इस धरती पर प्रकट होना सम्भव हुआ है। और इसी महाशक्ति की कृपा के बदौलत

हो, प्रकट रुप में वह नास्तिक भी अभी मौजूद है। याने उनका जीवित बने रहना सम्भव हुआ है। जिस दिन जिस क्षण, उस महाशक्ति की कृपा हटेगी, उस दिन उस क्षण, उस नास्तिक सहित हर किसी के, इस प्रकट रुप को, निश्चय ही निष्क्रिय हो जाना है, और फिर सड़ जाना है।

तो जिस महाशक्ति की कृपा से, हम सभी, अन्य जीव-जन्तुओं के साथ, अभी प्रकट रुप में हैं, और भविष्य में प्रकट रुप में, कर्म के मुताबिक, होते रहेंगे, उस महाशक्ति को, एवं उनके ही अन्य अंश शक्तियों को, अपने ही अंश शक्ति के साथ, जान लेना, पहचान लेना, उनके ही स्पर्श को अनुभव कर लेना, अपने ही लिए, कितना उपयोगी है? कितना आनन्ददायक है? खुद से अन्दाज करने की बात है।

इसी महत्वकांक्षा की पृष्ठभूमि में, इसी जानने पहचानने एवं अनुभव करने के प्रयास में, मुझे जो आभास (glimpse) मिला उसे आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। मेरे लिए तो शक्ति का आभास बहुत ही आनन्ददायक सिद्ध हुआ है।

अगर आप पवित्र वातावरण में, शुद्ध हृदय के, शुद्ध भाव से प्रतिदिन, शाम को, अकेले कोठरी में, एकान्त में, एक घन्टा ध्यान (meditation) करने का पहल करें, चिंतन करने का अभ्यास करें, तो शायद आपके लिए भी, उस शक्ति का ज्ञान, एवं स्पर्श का अनुभव बहुत ही आनन्ददायक होगा। शरीर को ही हल्का कर देने वाला होगा। आप माने या नहीं मानें, आध्यात्मिक क्षेत्र में, ज्ञान एवं विवेक ज्ञान की सम्पूर्णता मात्र अध्ययन में नहीं है वरन् योग के द्वारा शक्ति के स्पर्श के अनुभव में है। और

ऐसी उपलब्धि आपकी शारीरिक जिंदगी के लिए ही नहीं वरन शरीर के जीव के जीवन के लिए भी उपयोगी है।

अपने साधना (exertion) के बल पर, अनुभवों का अपने में वैसा संचय करना, मेरे समझ से कोई धर्म परिवर्तन नहीं है। कोई बहकावा नहीं है, वरन् विवेक ज्ञान की सूक्ष्म दृष्टियों से, परखा हुआ, स्वधर्म (religion concerning the self) को, एवं शुद्ध धर्म (real religion) को, समझना है पहचानना है और मानना है।

अतः अपने सम्बन्ध का ज्ञान हासिल करना, अपने अन्दर का विवेक ज्ञान को जागृत करना, कोई बहकावा नहीं है। भला-अपने ही शरीर के अपनी शक्ति (power) के सम्बन्ध के ज्ञान हासिल करने में भी क्या-कोई बहकावा होना चाहिए ? क्या-कोई पृथक धर्म (distincd religion) का रुकावट होना चाहिए ? क्या—कोई बहकाव करे या रुतावट करें तो उचित है ?

वही शक्ति, जो शक्ति आपके शरीर के अन्दर में भी है, से सम्बन्धित, एव वाह्य शक्तियों के संकेतों पर आधारित, मुझको प्राप्त ज्ञान "कुलाचार" के इन पृष्ठों में लिपिवद्ध है। मेरे अपने ज्ञान को शुद्ध करने एवं वृद्धि करने के ख्याल से आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

इसे कृपया आप भी अध्ययन करें चिंतन करें, और तब अपने ज्ञान के साथ मिलान करके, मेरे मत्तों की त्रूटियों को, मुझे बताने की भी कोशिश करें। जिससे कि मैं, अपनी गलतियों को समझ सकूँ और फिर सुधार भी कर सकूँ।

विनीत
"लेखक"

नोट—ध्यान देने की बात है, कि अपनी शक्ति (power) के द्वारा ही महाशक्ति (Supreme Power) को जाना जा सकता है। इसलिये अपनी शक्ति को दैविक अनुशासन से जागृत करना आवश्यक है। अपने पवित्र कर्म से अपने शरीर सहित अपने शक्ति को पवित्र रखना आवश्यक है।

"पैरवी"

कुछ लोग कहते हैं करो पैरवी।
और हासिल कर लो उच्च पदवी ॥१॥
पैरवी का ऐसा यह जमाना है।
इसके बिना तरक्की नहीं होना है ॥२॥
पैरवीकार होते इतने तगड़े हैं।
बनाते गदहे को भी घोड़े हैं ॥३॥
सुन कर अवश्य मन ललचाया।
निर्णायकों के प्रति भी तरस आया ॥४॥
जब मन में उठती उन्नति की बातें।
उच्च पद हासिल करने की बातें ॥५॥
आती याद पिता के उपदेश की बातें।
आती याद शास्त्र के उपदेश की बातें ॥६॥
बेटा बड़ा बनने की कोशिश न करो।
केवल भगवान पर ही निर्भर करो ॥७॥
जितना में रखे उतने में सन्तोष करो।
ईश्वर संग पित्तरों की नित्य पूजा करो ॥८॥

गरीबों का निश्चय ही सेवा करो ।
बड़ा बनने की तुम लालच न करो ॥६॥
देखो प्रकृति की रीति को धरती पर ।
फले हैं पौधे और खड़े हैं तरुवर ॥१०॥
आतो झटका कभी जब आँधी की ।
टूटते हैं डाली वो धड़ पेड़ों की ॥११॥
पौधे आंधी को तब शीस नवाते है ।
मां पर सिटक कर ही त्राण पाते हैं ॥१२॥
ऊँचे पेड़ जब धरासायी होते हैं ।
आवाज हवा में कोसों फैल जाते हैं ॥१३॥
दूर खड़े पेड़ों को जब देखते हैं ।
लकड़हारा भी मन ललचाते हैं ॥१४॥
ऊँचे पेड़ सभी जब कट जाते हैं ।
पौधे जहां के तहां रह जाते हैं ॥१५॥
पदोन्नतियों की इस होड़ में ।
खड़ा हूँ मैं द्विविधा की मोंड़ में ॥१६॥
करूं क्या समझ में नहीं आता है ।
बचन पिता का तोड़ना नहीं भाता है ॥१७॥
ईश्वर कृपा तेरी ही मुझे चाहिये ।
तेरी कुलीन बुद्धि ही मुझे चाहिये ॥१८॥
त्याग कर उच्च पदों की आडम्बरी ।
बनना में चाहता हूँ कुलाचारी ॥१९॥
तेरे कुल के प्यारा बालक बनूँ ।
न तूझे भुलूँ न पिता को भुलूँ ॥२०॥

इससे बढ़कर नहीं है तमन्ना मेरी ।
सुनो, हे, कुलेश्वर, हे कुलेश्वरी ॥२१॥

.....

पदवी हासिल करो या उँची गद्दी ।
एक दिन उड़ेगी बन्धु तेरी ही गुड्डी ॥२२॥
पदवी गद्दी यही पर रह जायेगा ।
पर दुष्कर्मों, का छाप लगा रहेगा ॥२३॥
फिर नहीं मिलेगें पैरवी की गद्दी ।
मिलेगें केवल सुकर्मों की गद्दी ॥२४॥

नोट—माँ से मतलब—धरती माँ ।
कुलीन बुद्धि—noble thought.

आवेदन

धर्म सम्बन्धी स्पष्टीकरणों के कारण, किसी धार्मिक नेता को, किसी धार्मिक ठीकेदार को, अगर कोई चोट पहूँच गई है तो उसके लिए, मुझ स्पष्टवादी को कौन सा दण्ड दिया जाए ?

प्रथम में—कुलाचार साहित्य के अन्तर्गत जहां कोई मत विवादास्पद (controversial) मालुम पड़े तो उसके लिये शास्त्रार्थ के साथ तर्क प्रस्तुत किया जाये ।

द्वितीय में—धर्म की बात है, दुःखित हुये पृथक धर्म के धार्मिक नेताओं को, ठीकेदारों को, चाहिये कि मुझ स्पष्टवादी को, गलत मत प्रस्तुत करने के लिये, ईश्वर के, अल्हा

के, God के द्वारा दैविक दण्ड दिलाया जाय। बड़ी खुशी होगी।

क्योंकि वैसे में पृथक धर्म के धार्मिक नेताओं और ठीकेदारों के पृथक धर्म के धार्मिक उपलब्धियों का, और उससे प्राप्त क्षमता के प्रयोग का भी, संसार के समक्ष प्रदर्शन हो जाता। और नहीं तो उनके ढोंगी (deceitful) होने का भी पर्दाफास हो जाता।

सलाह :—धर्म रुपी निर्मल शरीर में, राजनीति जैसी गरम लोहे का गोदना नहीं पड़ना चाहिये। नहीं तो उसका स्वच्छता एवं शुद्धता ही समाप्त हो जायगी। धर्म ही अधर्म हो जायगा। और उसके स्वच्छ निखार से प्रज्वलित भक्तों, भक्तिनों को अकारण ही मन में ठेस पहुँचेगा। अकारण ही मतभेद होगा। और लड़ाई का कारण होगा।

जो कुछ भी मैंने प्रकट कर दिया है, उसमें महाशक्तिमान के दैविक शक्ति का प्रभाव है। इस कारण जिस किसी को कोई बात आपत्तिजनक मालुम पड़े तो उसे सर्वप्रथम, अपने में दैविक शक्ति का अर्जन करना चाहिए। और तब उस दैविक शक्ति से युक्त बुद्धि के द्वारा ही, कुलाचार साहित्य में अंकित मतों का समीक्षा करना चाहिये। अपने कुल को समझना चाहिये। दैविक कुल को समझना चाहिये। और उनसे अपने को सम्बद्ध करना चाहिये। जिस सामाजिक, जिस परिवारिक ढ़ांचे में वंश नहीं बनता हो, कुल नहीं बनता हो तो उस ढांचे के व्यक्ति के लिये इस अमुल्य मत को समझना कठिन अवश्य है। और कुलाचार के रास्ते पर चलना कठिन अवश्य है। किन्तु दृढ़ निश्चय के साथ कुलाचार को अपनाने के बाद, उसे बनाये रखना अत्यन्त ही

आनन्ददायक।

नहीं तो दैविक शक्ति से सुशोभित दृष्टि से जब आप देखेंगे तो मालुम पड़ेगा कि महाशक्तिमान के ज्ञान रुपी समुद्र भण्डार कोसों दूर कौन है? किनारे रेत पर कौन है? तल पर कौन है? गहराई में कौन है? और गहनतम गहराई में कौन है?

इसी आधार पर यह भी आपको मालुम पड़ेगा कि असल में धार्मिक कौन है? ज्ञानी कौन है? और ढोंगी कौन है?

निर्भरता

हम सभी उस अदृश्य, महाशक्तिमान के पुस्त दर पुस्त के अंश पुत्र पुत्री हैं, जिन्होंने राम, कृष्ण, महा अमद एवं क्रीस्त को भी पैदा किया था। पैगम्बरों एवं अवतारियों सहित, हम सब में, उसी महाशक्तिमान के शक्ति का ही अंश है। उनमें केवल शुद्धता का ही अन्तर है। अन्यथा सभी अंश समान है।

महाशक्तिमान—महाशुद्ध परम पिता हैं।

राम, कृष्ण, महा अमद एवं क्रीस्त—उनके शुद्ध पुत्र हैं। कर्म के द्वारा जन्म जन्मोत्तर से परिशुद्ध आत्मा के साथ पैदा हुए शुद्ध पुत्र हैं। और वे देवलोक में शुद्ध रुप में ही रहते हैं।

हम भी महाशक्तिमान के सिलसिले के शुद्ध आत्मा के साथ ही, अवतरित होते हैं। जन्मते हैं। किन्तु बचपन बीता कि, मात्र भिन्नता लाने की भावना से प्रेरित, समाज के मन-गढ़न्त रीति रिवाजों में, और पृथक धर्म के वातावरण में पड़ कर गन्दा हो जाते हैं। और महाशुद्ध परमपिता के एवं उनके अवतारी शुद्ध पुत्र के, शुद्धता के स्तरों में नहीं पहुँच कर, बहुत

नीचली गन्दा स्तरों में, अन्धा-धून्ध, बिना बिचारे, भटकते फिरते हैं। यह केवल बिना सोचे समझे हुये धार्मिक निर्भरता के कारण ही है।

किन्तु ऐसी बात नहीं है, कि हम अपने को शुद्ध नहीं कर सके और परिशुद्धों के स्तर में अपने को नहीं पहुंचा सके। और इस तरह शुद्ध, परिशुद्ध होकर अवतारियों एवं पैगम्बरों के पार अपने परम शुद्ध परम पिता को नहीं पा सके।

इस बात को समझते हुये निजी प्राकृतिक पिता को पिता नहीं कह कर और दैविक महाशुद्ध परम पिता को पिता नहीं कह कर, एक गैर सम्बन्धी नकली पिता को पिता कहना-कितना अनुचित है ?

क्या—ऐसा करना निज पिता के साथ पित्तर महानों सहित महाशुद्ध परम पिता का अपमान नहीं है ?

अपने निजी माता-पिता को जिंदगी भर माता-पिता कहने मे अगर शर्म लगता है, तो नकली माता-पिता को, माता-पिता कहने मे तो और अधिक शर्म लगना चाहिये था।

उनके जिंदगी मे तो क्या-मरणोपरान्त भी बिना धार्मिक निर्भरता के शुद्ध मन से अपने माता-पिता को अगर माता पिता का सम्मान देंगे, तो निश्चय जानिये कि निज आत्मिक माता-सहित परम आत्मिक परम पिता, आप पर निश्चित रुप से खुश होंगे। परंपरागत निजी कुल धर्म के द्वारा निज आत्मिक माता पिता का खुश होना और उनके द्वारा परम पिता का खुश होना, आपका जीवन दर्शन ही शुद्ध हो जाना है। जीवन पटल ही उत्तम हो जाना है।

यह बात मानिए—मेरे प्यारे—यह कोई झूठ नहीं है।

इसके बाद तो खुद आप ही, राम, कृष्ण, महम्मद, क्रीस्त एवं तपस्वियों के स्तर पहुंच जाते हैं। और आपको भी देव-लोक में स्थान मिल जाते हैं। ऐसी सम्भावना जब सामने है तो अपनी भक्ति को, अपनी पूजा को, अपने ध्यान में आध्यात्मिकता के बीच आधे रास्ते में राम, कृष्ण, महम्मद एवं क्रीस्त तक ही अटकाना अच्छा नहीं है। बल्कि अपनी भक्ति, पूजा एवं ध्यान को उनसे बहुत आगे, उनके पार बहुत आगे, उनको ही जन्माने वाले तक पहुंचाना अच्छा है। खास अपने तथा परिवार के आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिये उत्तम है।

"रामो"

शिकायत

सब कुछ ठीक है,
पर एक बात अवश्य है,
ज्यों के त्यों आप हैं,
कृष्णा की यह शिकायत है ॥१॥
ग्यारह सालों पर देखता हूँ,
तबदीली बिना ही पाता हूँ,
और तो केशव सब ठीक है,
बस यही एक बेठीक है ॥२॥
तेरा शरीर नहीं बढ़ेगा,
यह भी नहीं कि घटेगा,
बूढ़ा पडित ने जब बताया,
तो अपने पर तरस आया ॥३॥

ईश्वर ने भड़कंप नहीं बनाया।
उस योग्य भी पेट नहीं बनाया,
और न टपकता जीभ बनाया,
अतः अनुमान उन्होंने ठीक लगाया ॥४॥

मुझे अफसोस कमी का होता है,
ईश्वर को ही कोसने को जी चाहता है,
मोटाने को तो भैंसा भी मोटाता है,
बस यही एक सन्तोष होता है ॥५॥

रामो मोटाया नहीं है,
क्योंकि वह भैंस नहीं है,
ऐसे में जब आक्षेप होता है,
परवाह नहीं किसी का होता है ॥६॥

नोट :—कृष्णा–कृष्णा बाचरा, कपोर खाई, चाईबासा।
केशव–केशव प्रसाद, उप समाहर्त्ता, गया।
बुढ़ा पंडित–मो० राजेश्वरी के पिता, रमना, गया।

उपदेश—कुलपूत को, अपने तन का विकास अन्न के द्वारा करने की चिंता नहीं करनी चाहिए। वरन् अपने तन के मन एवं बुद्धि के द्वारा आत्मा के विकास की चिंता करनी चाहिए। विकसित आत्मा का शरीर जल्दी बदलता नहीं है

अयोग्य

अक्सर लोग सुनाते ऐसी कहानियां।
सुनकर होती है जिससे परेशानियां ॥

नर, पति होकर भी होते नहीं पतियां।
नारी, पत्नी होकर भी होती नहीं पत्नियां ॥

समाज में होते कैसे कैसे नर नारियां।
प्रेम रस पीकर भी होते नहीं दम्पतियां ॥

हलवाई के वे चखते जैसे मिठाईयां।
भोजन के साथ चखते जैसे चटनियां ॥

वे आपस में वैसे चखते हैं जवानियां।
जैसे सदा करते हैं, मुर्गा और मुर्गियां ॥

चखते जाते हैं कैसे वैसे नर नारियां।
अनजानों के चखे बासी जूठों की जूठियां ॥

ऐसे में कभी हो सकते नहीं वरणियां।
पुत्र पुत्रियां भी होते हैं वर्ण संकरियां ॥

पशु तुल्य जिंदगी के वैसे नर नारियां।
असन्तुष्ट जिंदगी के वैसे दम्पतियां ॥
गन्दा कर चुके हैं जो अपनी हथेलियां।
बना सकते कैसे वे पवित्र रसोईयां ॥
चाहे जाएँ जहां कहीं वैसे नर नारियां।
पास आ सकते कैसे देव और देवियां ॥

अयोग्य हैं भोग अर्पन के वैसे जोड़ियां ।
नहीं है उनके लिये मेरे कुलाचारियां ॥

००० ००० ०००

नोट :—वरणियां–purity of blood

वर्ण-संकरियां–cross bread. Such sons and daughters, who do not know their fathers.

अस्थायी सम्पर्कों से अपवित्रताएँ होती है ।
जो कुलाचार के लिये उपयुक्त नहीं होती है ॥

आकर्षण योग

सही में कहा जाय तो कुलाचार का कुलयोग, एक आकर्षण योग है। आपके सामने मुख्यतः बहु चर्चित "कुण्डलिनी" योग है। हठ योग है। न्यास योग है।

कुण्डलिनी योग द्वारा, अपने शरीर के लिङ्ग के नीचे मूल कन्द में स्थित, कुण्डलिनी शक्ति, को जागृत्त किया जाता है। और मेरुदंड में स्थित विभिन्न स्तरों के कमलों से होकर ऊपर की ओर उठाते हुये, अन्त में सिर के उपरी सतह के सहस्र पद्मों को भेदता हुआ; चोटी से कुण्डलिनी को बाहर निकाल कर, देव-लोक में देवों से मिलाया जाता है। उसके आगे, ईश्वर से ही या ईश्वरीय तत्वों में ही शामिल किया जाता है।

अपने शरीर के अन्तःशक्ति "कुण्डलिनी" को वाह्य शक्ति के साथ साधना के द्वारा मिलाना ही "कुण्डलिनी योग" है। यह योग साधना की एक आनन्ददायक दैविक कला है। परन्तु यह एक कठिन कला है। दक्ष गुरु के बिना यह एक खतरनाक कला है।

आपसे परोक्ष में, बिलकुल अचर्चित एक गुप्त से भी गुप्त योग "कुलयोग" है। अपने नैसर्गिक (natural) कुल के साथ दैविक (Devine) कुल के संयोग का कुलयोग है। यह अत्यन्त पवित्र जीवन यापन का योग है। अपने को ही देव तुल्य बना कर देवों में शामिल होने का योग है। इसमें अन्तःशक्ति को शरीर से निकाला नहीं जाता है। बल्कि शरीर के पवित्रता के आकर्षण के द्वारा, पवित्र शरीर के पवित्र क्रिया कर्म के द्वारा वाह्य शक्तियों (पित्तर आत्माओं, देव आत्माओं एवं परमात्मा) को, अपने शरीर के अन्तःशक्ति के तरफ आकर्षित किया जाता है। अपने पवित्र रसोई में आकर्षित कर उन्हें पवित्र रसोई का भोग अर्पण किया जाता है।

अपने शरीर के अन्तःशक्ति (आत्मा) के साथ, अपने ही कुल के सिलसिला के, निकट अतीत एवं सूदूर अतीत के वाह्य शक्तियों (bodyless spirits) के साथ का संयोग एवं देवकुल के देवों के साथ सम्पूर्ण कुल के कुलेश्वरी का संयोग को ही कुल योग कहते हैं। इसीलिये यह सर्वोत्तम दैविक अनुशासन का योग है। अति आनन्ददायक दैविक कला है। सम्पूर्ण कुल को आकर्षित कर सकने योग्य, पवित्रता के सुगन्ध को जागृत कर सकने वाली योग है।

शर्त—दैविक अनुशासन के चरम पवित्रता को देवतुल्य बन कर कायम रखने में दम्पति को गलती नहीं करनी चाहिये। तब तो यह सरल योग है। अन्यथा कठिन योग है। थोड़ी सी गलती के कारण चरम दैविक उपलब्धियों से वंचित हो सकते हैं।

फल—वाह्य शक्तियों का अन्तःशक्ति के साथ के सम्पर्क का असीम

आनन्द को पूरे शरीर में अनुभव किया जा सकता है। इससे शरीर में असाधारण बल वृद्धि का भी अनुभव किया जाता है। कुलयोग के सही पालन से, कुलयोगी को अकस्मात किसी दुर्घटना की सम्भावना नहीं रहती है। क्योंकि शरीर पर आने वाली वाह्य दुर्घटनायें, वाह्य शक्तियों को पहले ही मालुम हो जाती है। और वे उसे टाल देते हैं। कठिनाईयों में कुलयोगी को वाह्य शक्तियों का अदृश्य साक्षात मदद अनायास ही मिल जाती है। इसमें लेशमात्र का सन्देह नहीं है।

इसी तरह के कई अनेक असम्भव को सम्भव कर सकने योग्य दैविक आचार को ही कुलाचार कहते हैं। यह अत्यन्त प्रभावशाली जप तप एवं ध्यान से परिपूर्ण योगाचार है। अपने तथा परिवार के तत्काल दैविक लाभ के लिये प्रत्येक दम्पति को कुलाचार का बिना हिचक अनुशरण करना चाहिये।

आदिवासी

हर मुख ने हर बार यही बात दुहराई है।
आदिवासियों की एक पहचान सफाई है ॥१॥
स्वच्छ घर में पवित्रता जो हमने अपनाई है।
आदमी तो क्या-देवता भी हमको देते दुहाई है ॥२॥

काला रंग तन की कुदरत की रंगाई है।
जिसमें जगमगाती हमारे दिल की सफाई है ॥३॥

आसमान की माँ काली के हम सपूत काले हैं।
उनकी कृपा से जो भी आये वे सभी सांवले हैं ॥४॥

नाटा कद वो छोटी नाक बाल गुंगराले काले हैं।
दुनियां जानती है, कि ये अजब हिम्मत वाले हैं ॥५॥

हो, मुण्डा, संथाल, उरांव, खड़िया नागा इत्यादि है।
अन्य लोग तो क्या, देवों के साथ ही हम आदि हैं ॥६॥

उच्च नीच का भेद बिना, केवल मानव जाति हैं।
इसी से तो लोग कहते हमें, कि ये जनजाति हैं ॥७॥

कुछ लोग कहते हमें कि ये तो जंगली जाति हैं।
जंगलों में तो छिपाई हमने अपनी ही संस्कृति है ॥८॥

मिट्टी के दिवालों के उपर खपरों का छप्पर है।
जिसमें बास करते, पुस्तों के हमारे पित्तर हैं ॥९॥

युगों की संस्कृति भी, हमारे साथ आज है।
हमें कह सकते नहीं कोई कि ये नकलबाज हैं ॥१०॥

मूर्ख रह कर भी संस्कृति हमारी सरताज है।
भूखे रह कर भी जिसकी हमको एक नाज है ॥११॥

इस संस्कृति की न कोई शुरुआत न उम्र है।
ठीक वैसा ही जैसा ईश्वर की न कोई उम्र है ॥१२॥

मुँह मुँह से कान कान से गुँजती ये संस्कृति है।
भला हमको समझते कैसे जो बाहरी व्यक्ति हैं ॥१३॥

तोंद रहित सुडौल तन हमें प्यारे लगते हैं।
ठेहूना तक फोता लटकाने को भी शर्माते हैं ॥१४॥

इसी कारण जंगली जिंदगी ही प्यारे लगते हैं।
प्रकृति के सम्पर्क में जहां सुडौल तन होते हैं ॥१५॥

कड़ी धूप की कड़ी कमाई हमारी रोजी रोटी है।
शायद हमारे जिंदगी की, यही एक कसौटी है ॥१६॥

मान लें इसको, हमारी दिव्य मां-की ही न्याय है।
चाहे हमारे प्रति अन्य करें कितनी अन्याय है ॥१७॥

हमारे गांवों में सरना एक छोटा कैलाश है।
बड़े कैलाश के मालिक आते इसी में पास है ॥१८॥

हम न करते तीर्थ, जहां पापी इकठ्ठा होते हैं।
शंकर तो आते नहीं, जहां कोल इकठ्ठे होते हैं ॥
पाहन के आह्वान पर जब मालिक आते हैं।
पाया बिना ही उस साल का हाल कह जाते हैं ॥
जंगलों में सदा गूँजती शिव पार्वती की वाणी है।
जिसे समझ सकते केवल जंगलों के प्राणी है ॥
इसी से तो वास करते निःसंकोच सभी जन्तु है।
जैसे कि मानो, सभी एक दूसरे के भाई बन्धु हैं ॥
इससे भी अधिक आनन्द क्या कहीं पा सकते हैं।
महलों में क्या कभी इसकी आभास ले सकते हैं ॥
प्रथम युग के प्रथम ज्ञान के आदिवासी हैं।
हमें समझ सकते क्या-जो बाद के निवासी हैं ॥
आदि से सम्बद्ध होकर अद्य के जो वासी हैं।
सही में कहलाते वही असली आदिवासी हैं ॥

हमको सम्बोधन करते अन्य लोग कि कोल है।
सचमूच में वैसे लोग धन्यवाद के काबिल हैं ॥
युग युगों से पूर्वजों ने कायम रखी जो कुल है।
उन्हीं कुलों को कायम रखने वाले हम कोल हैं ॥
निज कुल के रक्षक हम बालक कुलाचारी हैं।
ठीक वैसे जैसे कि पूर्वज महेश कुलाचारी हैं ॥
मानो या नहीं मानो हमारा कुलधर्म सजीत है।
सीखी है हमने, उनसे जो सभी जीवों के जीव हैं ॥
हम न सोचा करते कि भोग क्या चढ़ाने हैं।
पर पूजा किया तो पूजा का फल भी सामने है ॥
इसी कारण तो कहते लोग कि जिंदा धर्म है।
निज कुल में फिर जन्म लेने का उमदा धर्म है ॥
हमारी बोली वैसी जैसी चिड़ियां चहचहाती है।
स्वयं में बिरले किसी से नहीं मिलती जुलती है ॥
शुद्ध पूर्वजों के हममें हमेशा से शुद्ध खून है।
दूसरों के जैसा नहीं, कि हम विश्लेषणहीन हैं ॥

.....

माफ करो हे लोगों ये शिव पार्वती की वाणी है।
इसे कोल रामो ने भी नहीं लिखी मनमानी है ॥
आदिवासियों ! तुम न लोभ करो धन दौलत का।
लोभ करो केवल, निज कुल में ही जन्म लेने का ॥

नोट-जीवों के जीव-शिवजी, मालिक-शिवजी, अद्य-वर्तमान

उलझन

यह सिद्धान्त है, या वह सिद्धान्त है
सीखते सीखते तो आया थकान है
पर जान न सका कहाँ वेदान्त है
मन को प्रवृति उपर उठने की है
आँख भी समानान्तर देखने की है
कैसे चलूँ राह बात सोचने की है

क्या करुँ सिर को उठाय रखूँ
अथवा सिर को झुकाय रखूँ
सही कौन हूँ कैसे मैं परखूँ
नीचे देखता हूँ तो तू छूट जाता है
ऊपर देखता हूँ तो चीटी दबता है
ऐसा सोचते ही उम्र बीत जाता है

जब मैं न मानूँ गुरू किन्ही को
मानुगाँ गुरु सीधे तुम्ही को
स्वीकार करो हे ! चेला मुझको
पिता गुरु बने और पुत्र चेला
सदा चलता रहे यही सिलसिला
तेरी ही कृपा से हे ! कुला अकुला

नोट—वेदान्त-बिवेक ज्ञान का अन्त, कुला-पार्वती, अकुला-शिवजी
पिता-निज पिता, पिता-परम पिता, कुल पिता।

समय की पूजा

तू इस बात को सुन ले या लिख ले।
पर इसे अवश्य दिमाग में रख ले॥
कोई अपने को चाहे जो भी समझ ले।
समय के आगे कोई नहीं है निराले॥

समय बनकर ही वे आये थे।
श्री राम और कृष्ण जिसे कहते थे॥
अमद वो क्रीस्त जिनको कहते थे।
समय होते ही वे लौट गये थे॥

मेरी आपकी वही स्थिति है।
जैसा उन महानों की गति है॥
वैसी ही करोड़ो की होती आयी है।
इसमें तबदीली कभी नहीं आयी है॥

उनके नामों का जो भी धर्म बना लें।
उन धर्मो का जो भी कौम बना लें॥
और उसमें अपने को पागल कर लें।
पर समय के आगे होंगे नहीं निराले॥

अतएव हे ! आदिवासी कहलाने वाले।
मिलेंगे बहुत आपको ठगाने वाले॥
झूठे हैं, भिन्न धर्मों को चलाने वाले।
पर सच्चे हैं, समय की पूजा करने वाले॥

नोट—समय-काल है। माँ काली है। महाकाल है। हमारे शरीर में काल का अंश है। अतः हम सभी काल हैं। इसी कारण महाकाल (समय) का हम अंश कालों पर प्रभाव पड़ता है। हमारे दिवंगत माता पिता, हमारे पूर्वज भी अंश काल ही थे। अभी वर्तमान (existing) के इस शरीर से युक्त पुत्र (अंश काल) के द्वारा अपने ही अस्तित्व-हीन पित्तरों (अंश कालों) की पूजा, अर्पण महाकाल की ही पूजा अर्पण है। अतः अपने अपने निज जनों को अपने अपने अंशकाल श्रोतों की हमें पूजा करनी चाहिये। क्योंकि इससे अपने पुत्र के द्वारा अपनी ही पूजा होने की गुंजाइश है। पुत्र के कुल के सिलसिला में सतत चलने वाला यही कुलपूजा है।

अन्य पृथक धर्मों में तो अपनी ही पूजा होने की गुंजाईश नहीं है। क्योंकि वह पृथक धर्म, गैर सम्बन्धी किसी अन्य के इबादत (worship) करने एवं आहुति (offering) देने की शिक्षा देता है।

गुण बखान

सत्य युग से द्वापर वो कलियुग तक को लेखनी।
सदा विद्वानों के मुख से कोलों की है गुण बखानी ॥ १
कह कर ऐसा मैं न करता कोलों की तरफ सानी।
इसे तो प्रमाणित करता तुलसी जैसा रामायणी ॥ २

भगवान राम के बनवास काल का चौदह साल।
गुजरी थी कोलों के संग जंगलों में ऐसे मेरे लाल ॥ ३
जैसे कि मानों अयोंध्या बासियों से नाखुश होकर।
विधाता ने ला दिया राम को, कोलों से खुश होकर ॥ ४
कुलीन सीता फुस वो पत्तों की एक छोटी झोपड़ी में।
सुख के दिन निश्चित, ऐसे गुजारीं थी पंपापुरी में।। ५
जैसे आज तक जंगलों के बीच में कुलीन नारियां।
निर्भय हो बास करती बिना खाए तेल की पूड़ियां ॥ ६
यहां न कोई राजा और न ही उनके राज के सिपाही।
सुनी न जाती थी, वहां कभी; उनकी कोई आततायी ॥ ७
जो भी था झोपड़ी के चहुं ओर प्रकृति ही प्रकृति था।
और आसमान में सबका मालिक विराजमान था ॥ ८
वैसे वातावरण मे प्यारे राम सीता वो लक्ष्मण।
सरल रहते थे ऐसा, मानो वे कोलों के थे स्वजन ॥ ९
हिलमिल कर रहने में भला होता क्या अड़चन।
जब भेदभाव से मुक्त स्वच्छ है सब का जीवन ॥ १०
वातावरण को लेकिन दुषित किया था सूर्पणका।
मार्ग में राम, लक्ष्मण को छोड़कर वे बेमतलब का ॥ ११
सज्जन कैसे करे बर्दाश्त भला उस छेड़खानी का।
क्रोधित हो लक्ष्मण ने काट दिया था नाक उनका ॥ १२
बहन की शिकायत से क्रोधित हुआ राजा रावण।
मरीचिका को साथ लेकर पहुंचे थे वे ततक्षण ॥ १३
कुल नाम बिना, कोई कैसे कहते आखिर थे वे कौन।

किन्तु आज दावी करते हैं, असली में थे वे ब्रह्मण ॥ १४
नष्ट हुआ हाय ! उन सबके सुख का वह मुस्कान ।
जब से पहुंचा था, उस स्थान में वे दुराचारी बाभन ॥ १५
मरीचिका को स्वर्ण हिरण का जादू रुप बना के ।
ठग लिया राम लक्ष्मण को, मन सीता का ललचाके ॥ १६
विश्वास योग्य सन्यासीका,अपना धोखा वेश बनाके ।
पहुंचा कुटियाके पास झूठे ही भिक्षाका पात्र बढ़ाके ॥ १७
पतिव्रता को जबरन लक्ष्मण रेखाएं पार कराके ।
उठा ले गया सीता को, करनी का अंजाम समझ के ॥ १८
धोखे में थके, लौटे थे कुटिया में जब राम लक्ष्मण ।
कल्पना के बाहर दुखित हुआथा दो भाईयों का मन ॥ १९
कहां हो सीता ! कहां हो ! रामकी आवाज का गुंजन ।
डूब गया था पशु पक्षियों सहित सभी कोलों का मन ॥ २०
खाली हुआ पंपापुरी खोज में चले जब राम लक्ष्मण ।
रह सकते कैसे कोई, दुःखित हुआ था सबका मन ॥ २१
बन्दर भालुओं में, काल अपन को कर परिवेत्तन ।
नीचे ऊपर करते जाते थे वे मार्ग का सर्वेक्षण ॥ २२

नोट :—कुल नाम–उदाहरणार्थ–शरीर नाम - "रामो" कुल नाम विरुवा ।

कविता की धारा बहुत सुन्दर बढ़ रही थी । किन्तु दूर्भाग्य वश किसी ने ध्यान तोड़ दिया, और कविता जहां के तहां रुकी रह गयी ।

इस कविता में भगवान राम के साथ कोलों के निकटमत सम्पर्क को दर्शाकर, उनके उस समय के स्थिति को स्मरण कराने का मैंने कोशिश किया है । जिससे कि कोल, अपनी वर्त्तमान स्थिति को मिलान कर सकें ।

पम्पापुरी—रांची जिला में गुमला के निकट का वर्त्तमान पालकोट है ।

दा वी

अलग-अलग, कुछ गिरोह के लोगों के द्वारा संसार में बहुत से धर्म बनाए गये हैं । फिर बनाए भी जा रहे हैं । जिसे पृथक धर्म (distinct religion) कहे जाते हैं ।

इन्हीं धर्मों में कुछ लोग शामिल हो जाते हैं । अपने को उस धर्म में पंजीकृत करा लेते हैं । और उन धर्मों में प्रचलित कोई नाम से, अपने को पुकारने लगते हैं । और एक धार्मिक पुस्तक भी मुफ्त या सस्ते कीमत पर प्राप्त कर लेते हैं । और मात्र इसकी सी प्रक्रिया अपना लेने के बाद, वे दावी करते हैं, कि हम तो फलां धर्म के हैं । हम तो फलां पैगाम्बर को मानते हैं । और इसके बाद पूर्व के निज सगे सम्बन्धियों से घृणा करने लगते हैं । अपने वंश के पित्तर आत्माओं को भी त्याग देते हैं ।

ऐसे ही लोग यह शिकायत भी करते हैं; कि परम्परागत कोल आदिवासियों के धर्म नही है । उनका कोई पृथक धर्म (distinct religion) नही है ।

यहां सोचने और समझने की बात है, कि क्या दावी करने मात्र से, कोई किसी धर्म का हो जायगा ? क्या दावा करने मात्र से वह पृथक धर्म, उसका धर्म हो जायगा ?

मेरे समझ से धर्म कोई ऐसी वस्तु नही हैं, जिसे हथिया लिया जाय। जिस पर कब्जा जमा लिया जाए। और फिर उस पर अपना स्वामित्व भी कायम किया जाए। मुझे तो वैसा होने वाली बात विश्वास लायक बात नही मालूम पड़ती है। अगर वैसा सम्भव हो भी जाए, तब पर भी, वह तो उधार लिया हुआ या कब्जा किया हुआ, या खरीदा हुआ, परधर्म ही है, स्वधर्म नही है।

फिर यह भी विचारने की बात है, कि तपस्या के जरिए आत्मा से महान आत्मा बनने वालों, या महान आत्मा के स्तर में होकर जन्मने वालों, के नाम के ही पृथक धर्म बनाए गए हैं। गत ढ़ाई तीन हजार वर्षों के अन्दर महान आत्माओं के शरीर के नाम के ही पृथक धर्म, उनके चेलों के द्वारा, अनुनायिओं के द्वारा, बनाए गये हैं। किन्तु आत्माओं को, महान आत्माओं को जन्माने वाले, परम आत्मा के नाम के, पृथक धर्म नही बना एगए हैं। शायद यह किसी के लिए सम्भव भी नही है।

भला—परम आत्मा का तो, परम धर्म ही हो सकता हैं, पृथक धर्म नहीं हो सकता है। परम आत्मा का परम परागत धर्म ही हो सकता है। उसके अन्दर से नया पृथक धर्म नही हो सकता है। परम आत्मा का परम शाश्वत सृष्टि के नियमों का हीं धर्म

हो सकता है परम आत्मा के जैसा ही पवित्र से पवित्र – परम पवित्र है जो किसी आत्मा कों परआत्मा के जैसा ही परम पवित्र बना सकता है। इसके अलावे यह धर्म और परम आत्मा के जैसा ही गुप्त से गुप्त – परम गुप्त धर्म हो सकता है। पृथक धर्म नहीं हो सकता है।

ऐसी हालत में, कोल आदिवासियों के पवित्र एवं गुप्त कुल धर्म परमात्मा का ही परम धर्म है। बहुत अच्छी तरह सोंचा जाए तो मालूम होगा कि पृथक धर्म आपको सब से पृथक करने के लिए है। सबसे पहले तो समाज से पृथक करने के लिए है। फिर माता पिता से पृथक करने के लिए है। इसे ठीक से सोचिए।

परंपरागत धर्म के संबंध में, दिखावटी; पृथक धर्म के दावेदारों की यह शिकायत "कि कोल आदिवासियों के धर्म नहीं हैं' उनके कोई पृथक धर्म नही है" कितना अनुपयुक्त हैं! सोंचने की बात है। अरे! सही में कहा जाए तो पृथक के नामपर, परमात्मा के परम असली धर्म से तो खुद आप हीं तो पृथक हो गए है।

सही में कहा जाए तो धर्म कोई गिरोहका नही है, व्यापारिक संस्था या जन समूह (Company) का नहीं है। और ऐसा हो भी नही सकता है, कि जिससे इसे, किसी एक जन-समूह (जात-कौम) की साधूहिक धार्मिक लक्ष्यकी पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया जाए। जहां जन समूह के लक्ष्य की बात आती है, वहीं अधर्म की बात भी पहूंचती है।

अगर इस पृथक धर्म को, समान लक्ष्य के, किसी एक जन समूह का भी मान लिया जाए; तो उस जन समूह के अन्तर्गत, तो

शायद पृथक धर्म के कारण से ही भावनाएं ऐसी पृथक हो गई कि घनिष्ठ सबंधों में भी, पिता के पुत्र नही है, पुत्र के पिता नहीं है । मां के होने की तो बात हीं अलग है । तो भाई के भाई, बहन के भाई या भाई की बहन हो सकते भी हैं, सोचने की बात हैं । कहने के लिए ही शायद कोई होते हैं । पर असली में जिंदगी में भले हीं दूर से पहचान भी लें अचानक भेंट होनेपर, या कभी घर में आ जाने पर पहचान भी लें, परन्तु मृत्यु के उपरान्त तो कोई किसी को पहचानते ही नहीं हैं । याद करते ही नहीं हैं, मानते ही ही नही हैं । क्योंकि पुत्र पृथक धर्म के कारण, पित्तर आत्माओं की पूजा नहीं करते हैं, उन्हें अपना मानते नहीं है ।

वे तो अपने जन्म के श्रोत के बाहर निज जनों के जन्म के सिलसिले के बाहर के, किसी गैर महान आत्मा, को ही मानते है । नतीजा यह हूआ है; कि पति—पत्नी को, पत्नी — पति को अपना नहीं मानते हैं । पिता-पुत्र को और पुत्र–पिता को अपना नहीं मानते हैं । इसी कारण उनमें आत्मिक लगाव (Spiritual Cohesion) नहीं होता है ।

वे तो पिता, माता, पुत्र भाई, वो बहन सभी अलग-अलग अपने अपने स्तर से केवल पैगम्बर को, केवल ईश्वर–पुत्र को ही अपना मानते हैं वे एकदूसरे को अन्तरात्मा से अपना नहीं मानते हैं । इस कारण ही उनमे आत्मिक लगाव बन पाता नहीं है ।

गैर तो गैर हो हैं, वे किसी प्रकार अपना नहीं हो सकते है । लेकिन गैर ही होकर भी कोई उसे अगर अपना मानने लगे जबरदस्ती भी अपना मानने लगे तो क्या मानने वाले को वे गैर बदले

में, परस्पर के संबंध में, उसे भी अपना मानने लगेंगे ! शायद नहीं क्योंकि गैर तो गैर ही है । अगर वैसा भी हो जाए तो शायद वह परस्पर मानने का संबंध टिकाउ नही हो सकता है क्योंकि गैर तो गैर ही है । उनमें नाते गाते (Kith and Kin) की–भावना शायद जग नहीं सकती । सोचमे की बात भी है कि पृथक महान आत्मा के पृथक धर्म के अन्तर्गत, पृथक पृथक ही महान आत्मा को अपना मानने के कारण सभी का दिमाग तो पृथक विचारों में है । तो वैसे में अपने ही जन्म के श्रोत के एक दूसरे को अपना किस प्रकार मान सकते हैं । और इस भावना के बिना एक दूसरे (पिता - माता - पुत्र - पुत्री) के प्रति कर्त्तव्य की भावना किस प्रकार जग सकती है ! और इस भावना के बिना एक दूसरे की पूजा ही किस प्रकार हो सकती है । लिहाजा वे सभी पृथक धर्म वाले आत्मिक लगाव के बिना जानवर की मृत्युही मरते हैं ।

इसी कारण तो मेरा यह विचार होता है, कि धर्म तो हरेक पुत्र - भक्त के लिए, निज जनो के प्रति कर्त्तव्य का निजी उपलब्धि है । यह उपलब्धि व्यक्तिगत है । यह दैविक लाभ की प्राप्ति का एक व्यक्तिगत लक्ष्य है । और अपने लिए तथा अपने परिवार बंश एवं कुल के लिए दैविक लाभ का संचय, व्यक्तिगत प्रयास के द्वारा ही किया जा सकता है । सामूहिक बल के प्रयास के द्वारा नहीं किया जा सकता है । वैसा करना ही एक अधर्म है । अगर सामूहिक बल से धर्म का अर्जन किया भी जाए तो, उसका बंटवारा, उस समूह के लोगों के बीच किस प्रकार होगा !

जैसा आप दैनिक जिंदगी में खुद ही मेहनत करते हैं, अपने तथा अपने परिवार के भरण पोषण के लिए खुद ही मेहनत करते हैं, और इस का लक्ष्य, अपना तथा अपने परिवार के पेट पूजा के लिए ही है।

वैसा ही, उसी पेट पूजा के जैसा ही परिवारिक दैविक लाभ के लिए, पूण्य का संचय करने के लिए, खास आपही को अकेला कर्त्तव्य करना हैं। इसमें दूसरा आदमी, चाहे वह समान लक्ष्य के समूह का आदमी ही क्यों न हो, आपके लिए मददगार नही हो सकते हैं। और न ही उसका मदद आपको, तथा अपने परिवार को उपयोगी हो सकता है। क्योंकि अलग-अलग शरीरों के द्वारा किया गया कर्त्तव्य हीं अलग अलग है, और उसका फल भी अलग अलग ही है। जिस प्रकार अलग अलग शरीरों के अलग चिंताएं हैं और उनका अलग शरीर पर अलग ही प्रभाव होता है। उसी प्रकार हर अलग शरीर के द्वारा किये गये कर्मों का; दैविक प्रभाव ही हरेक शरीर के लिए अलग ही होते हैं।

अतः एक शरीर का कमाया हुआ धर्म, एक शरीर का कमाया हुआ पूण्य, दूसरे शरीर में हस्तान्तारित (Transfer) नहीं किये जा सकते हैं।

इसी कारण कर्म और धर्म या धर्म और कर्म अकेले का है खुद के शरीर का है। अपने तरीके से करने का है। समूह का नहीं है। धर्म हमेशा ही स्वधर्म है। धर्म का स्वरूप ही स्वधर्म है। इसे खुद से चिंतन करके जांच करें।

धर्म को सामूहिक समझ करके ही लोग एकत्र होने का एक स्थान बनाते हैं। वहां अपने ढांचा (Design) का एक मकान

बना देते हैं। और उसमें एकत्र होकर सामूहिक प्रार्थना करते हैं। एकत्र होने के खास एक दिन निश्चित होते हैं। और उस दिन, उस समूह के, सभी को मजबूरन शामिल होना पड़ता है।

यहां सोंचने की बात है कि हर कोई एक समान स्वच्छ नही होते हैं। हरेक शरीर एक समान पवित्र नहीं हो सकते हैं। हरेक एक समान पाक साफ नहीं हो सकते हैं। बाहरी पोशाकों से तो साफ दिखाई देते अवश्य हैं। किन्तु अन्दर से कितने पवित्र (पाक) हैं, निश्चय नही किया जा सकता है।

तो एक अपवित्र; एक नापक के कारण से, वह स्थान उस स्थान का मकान, वरन वहां का सारा वातावरण तो एक साथ ही अपवित्र एवं नोपाक हो जाता है। तो वैसी हालत में सामूहिक स्थान में सामूहिक प्रार्थना के द्वारा आह्वान करने पर भी, ईश्वर अल्हा, God, या उनके दूत कैसे समूह के निकट या किसी के ही निकट आ सकते हैं? फिर वैसे सामूहिक स्थान के समूह में शामिल होकर किया गया पृथक धर्म का पृथक धार्मिक क्रिया भी, भला किसी व्यक्ति विशेषको किस प्रकार लाभ प्रद हो सकते हैं? सोचने विचारने की बात है।

अतः धार्मिक क्रियाएं भी सामूहिक स्थानका नहीं है। समूहका भी नहीं है। वरन एकान्त का हैं। खास अपने शरीरकाहैं। अपने घर का हैं। क्योंकि—अपने को, अपने परिवार को, एवं अपने घर को जिस प्रकार अपने संतुष्टि के लायक पवित्र रखाजा सकता

हैं; उस प्रकार सामूहिक स्थान के सामूहिक घर को, एवं अपने सहित समूह के सभी को पवित्र नहीं रखा जा सकता है।

तो वैसी हालत में धर्म के भूखे भक्त लोग, खुद अपने को अपने परिवार को, अपने घर के वातावरण को; इतना पवित्र रखने की क्यों-कोशिश नहीं करते हैं ! जितनी पवित्रता कायम रखने से, निज पूर्वज आत्माओं के साथ ही महान आत्मा एवं परमात्मा, खुद अपने पास ही अपने घर में ही पहुंच जाएं ? पूजा के पवित्र भोग प्रतिदिन पाने के लिए पहुंच जाएं । और और इसका आभास घर के कर्त्ता को एवं उनके परिवार को भी मिलता रहें।

क्या—ऐसा कर सकना संभव नहीं है ! वास्तव में इसी को संभव कर सकना ही किसी धार्मिक आचरण की सफलता है । जिस धर्ममें ऐशा संभव नहीं नहीं हैं। वह धर्म नही है। "लेखक"

—: :—

Actual Truth

I do not know god directly.
I do not know Angels directly.
I do not know Heaven directly.
I do not know Incarnations directly.
Whatever I know about them.
I know from the professional preachers.
And from their Religious Books
Thus my knowledge is 2nd hand.

But I know my parents directly.
They combined togather previously.
And in that way they willed jointly
By helping each other mutually
This made my appearance possible
As also my extension of life possible.
Thus I know my descent directly.
Without preachers and books perfectly.

Then who kindled the love fire
In my mother and in my father
Surely it was Supreme Power
In the Universe and no other.
Tnis is true and guite sacred
Which I have personally realised.
Now my mind is quite cleared
Though others may get bewildered,

This knowledge of His Creation
And that of my re-creation
Becomes my First hand knowledge
The Nature's truest knowledge
With this back ground of my self
To whom should I dedicate my self.
The visible preceptors here
Or the invisible Angels there.

No. in the extension cf Divineldea
My parents were the sole media
Humble paternal will erupted First
And Divine Grace followed that
As sustainers of both will and grace
For my incarnation as son in race.

So I am the bi-product combined
Of parental will and Divine Grace.

So being a racial son genuine
Of my purest genealogical Line
I should worship Manes with Divine
By offering them food and wine.
I should channelise my voice
Because God channelised His Grace
This is the Ab-original's practice
For the Divine touch and experience.

Then where shall I worship them
In my kitchen or in Common room
No. Manes of my line are my specials
They need my service special
Under the purest conditions special
In my purest kitchen room special
This certainly is the logical tradition
Among the Purest Kols of Kolhan.

Coming down descent after descent
Concealed secret in their heart
From time immemorial till date
Which Lord Shiva has revealed
On the request of His consort
As the sons and sons method best
which is pleasant to Manes and God
But still is unknown to the world.

— : —

आदमी (हो)

न हिन्दू हैं न तू मुसलमान
न सिख और न ही क्रिस्तान
करके एक मन गढ़न्त निशान
कराते हैं अपने को पहचान ॥१॥

तू केवल हैं एक आदमी
सफेद काला हों या बादामी
ध्रुवों के हों या पूर्वी पश्चिमी
तू ईश्वर के हैं एक आदमी ॥२॥

जीवों के जात कई एक हैं
उसमें आदमी जात भी ऐक हैं
जो करते विभेद अनेक हैं
वे जानते नहीं जात ऐक हैं ॥३॥

धर्म अजीव ऐक मसला हैं
जो कराते बन्दों में फांसला हैं
पर जहां तक अपना मामला हैं
मैं तो ईस्वर के ही लाडला हैं ॥४॥

हूं मैं आत्मा वे परमात्मा हैं
मुझमें वही अंश आत्मा हैं
ऐसी भावना में जो आत्मा हैं
सही में वनते वही महात्मा हैं ॥५॥

न स्वर्ग हैं न दोजख हैं

जो कुछ हैं सो सन्मुख है
अच्छे कर्म के अच्छे लाभ हैं
दुष्कर्म के सुख दुर्लभ है ॥६॥
जो ऐसा चैतन्य जगाते हैं
असली मं मनुष्य कहाते हैं
भवसागर को पार करते हैं
अमृत के भी हकदार होते हैं ॥७॥

नोटः- कोल मुण्डा भाषा में, अपने को "हो" कहते हैं। हो = आदमी अतः कोल - एक आदमी है। अन्य आदमी नहीं है। आदमी से, मनुष्य होते हैं, मनुष्य से भगवान होते हैं। भव = जन्म पुनर्जन्म दोजख = नरक।

ब्रह्म रूप

संसार में जब भिन्न मत्तावलम्बियों के
पूजा प्रार्थना जप तप करने वालों के
वर्णन करते समय ब्रह्म के रूपों के
दावी करते हैं साकार निराकार होने के ॥१॥
सुनकर मुस्कुराहट मुझे तब आती है
फिर ध्यान भी दूर तक चली जाती है
जाहिर होता बात उनकी अन्दरुनी है
उनको ज्ञान अमृत प्राप्त कितनी है ॥२॥
फिर याद आती बात उन चार अंधों की
प्रयास किए थे कभी हाथी को जानने की

हाथी अंगों को अलग अलग पकड़ के
दावो किए थे कि हाथी है इसी प्रकार के ॥३॥
ब्रह्म न साकार है, और न निराकार है
केवल जानिए उनको निम्न प्रकार हैं
दृश्य अदृश्य या अन्य जो भी आकार हैं
उनमें किसमें नहीं ब्रह्म साक्षात्कार हैं ॥४॥
जगत में जितने सारे रूप बिखरे हैं
केवल उनके प्रगट होने के स्तरे हैं
स्थूल सूक्ष्म या सूक्ष्म रहित जो काएं हैं
जान सकेंगे, जैसा जिनकी क्षमताएं है ॥५॥

सन्यासी बेचारा करे क्या — पेट बोरा जब कस जाता है
बेचारा हरि भी करे क्या — ढक्कन टेरिन का लग जाता है
पेट भरने की दौर चली है — वहम उपर उठने लगती है
बटोरने की दौर चली है ॥१॥ — सत् भावों को चाट जाती है ॥२॥

मोह का जाल बिछ जाता है
दिमाग भी नाली हो जाता है
पशु जैसा ही खाता सोता है
पशु जैसा ही मर जाता है ।

रोजा

रोजा का मतलब सीख लिया ।
रोजा वालों को भी देख लिया ॥१॥
बन्दे । मन का रोजा नहीं करते है ।

केवल अन्न का ही रोजा करते है ॥२॥
ऐसे में रस्म तो अदा हो जाते है ।
पर मन मलिन ही रह जाते है ॥३॥
हमेशा जो मन का रोजा करते हैं ।
अन्न से दूर मन में ही समा जाते हैं ॥४॥
सब कुछ मनोमय हो जाते हैं ।
रोजा का मतलब सिद्ध हो जाते हैं ॥५॥
वायु से भी जैसे मन द्रुतगामी है ।
भक्तों में वैसे मन ही सत्यगामी है ॥६॥
मन के सिवा बाकी सब झूठा है ।
चाहें बखाने कितना ही अनुठा है ॥७॥

नोटः--मन का रोजा=बुरे ख्यालों से परहेज । मन में समा जाते हैं - अल्हा के विशाल मन में अपना मन समा जाते हैं । मलिन= मैला, कुचैला । सत्य - real, Supreme Power

रोज

कुल धर्म अपने जन्म का निजी धर्म है ।
जिसके लिए पिता ही सिखाते मर्म है ॥
ठीकेदारों की नहीं कभी ईतजारी है ।
कुल के पूजा के खुद ही अधिकारी है ॥
माता पिता ने जो तुझे यहां अवतारा है ।
पूजा किए विना पुत्र को नहीं उद्धारा है॥

पितृ - भक्ति एक दैविक शिष्टाचार है ।
रोज की जिंदगी का ही अमुल्य आचार है ॥
इसको निभाना पुत्रों का एक धर्म है ।
करने योग्य कर्मों में से एक कर्म है ॥

अपना सम्मान

हम रुढ़िवादी हैं ।
हम पीढ़ीवादी हैं ॥
यह बात सही है ।
प्रभु भी तो वैसी है ॥
नकल बाज आए हैं ।
आप भी हो गए हैं ॥
उनका बदला ढंग है ।
बदला नाम का रंग है ॥
हमारे तो पिता माता ईश्वर ईश्वरी हैं ।
पति पत्नी भी आपस के ही पुजारी हैं ॥
तन मन आत्मा से संबध अपनों का है ।
स्वर्ग नरक में भी संबंध अपनों का है ॥
आप तो अकेला गैर का भजन करते हैं ।
जैसा पशु मैदान में अकेला चरा करते हैं ॥
पति पत्नी होकर भी अलग अकेला है ।
मां बाप के सन्तान होकर भी अकेला है ॥

बताइए बदलकर भी आपको क्या सम्मान है ?
जिंदगी के बन्दना के बाद आपका पुजारी कौन है ?

अता पता

उस व्यक्ति को जब देखा जाता है
हालत तब अजीब हो जाती है ॥
जो जब जहां पहुंच जाता है ।
वह वहां वैसा ही बन जाता है ॥
आने के पर्व की याद छूट जाती है ।
जाने के बाद का भय दब जाता है ॥
किन्तु समय जब आ ही जाता है ।
असलीयत का पता हो ही जाता है ॥
पुनः मुसिको भवः तब हो जाता है ।
वहम का नशा ही उतर जाता है ॥
पर कुटिल भाव से जो जीता है ।
सबके नजर में तुच्छ हो जाता है ॥
सुख से हर क्षण वही जीता है ।
कर्म से जो सबको खुश करता है ॥

मुहुर्त

दिन दिन का दिन चर्जा सालों में गुजरा ।
साल साल का साल चर्जा मुर्यों में गुजरा ॥
कुछ समझ में आया नहीं कैसे गुजरा ।
किन्तु अन्त हुआ नहीं जिंदगी का माजरा ॥१॥

पूर्वान्ह वो अपरान्ह बैठ कर गुजरा ।
और रात कोठरी में लेट कर गुजरा ॥
यह रात और दिन क्या मँहगा गुजरा ??
नहीं नहीं यह तो बहुत सस्ता गुजरा ॥२॥

जैसे आदमी रात दिन खाते सोते हैं ।
काम अधिक एक व्याभिचार करते हैं ॥
वैसे पशु पक्षी भी तो करते रहते हैं ।
बोलिए, कौन किनका नकल करते हैं ??३॥

देखा, आदमी मुहुर्त्त में विशेष खाते हैं ।
पशु पक्षी मुहुर्त्त बिना खोजा करते हैं ॥
चाँद सूरज के दिन गिनती करते हैं ।
क्या इसी से ज्ञानी विशेष बन जाते हैं ??४॥

कोई दो पैर के हैं, कोई चार पैर के हैं ।
कोई बटोरते है, कोई रोज खोजते हैं ॥
काल के नीचे जमीन पर सभी खाते हैं ।
इससे भी विशेष क्या-और होते हैं ??५॥

शुभ दिन शुभ मुहुर्त्त बिना जन्मते हैं ।
किन्तु शुभ दिन शुभ मुहुर्त गिनते हैं ॥
अपने कर्मों को तो कभी नहीं बाचते हैं ।
पर विधाता के शुभ दिनों को बाचते हैं ॥६॥

विधाता बिना वाच के ही दिन बनाते है ।
आदमी वाच के उसे इस्तेमाल करते हैं ॥
फिर भी वाचने वाले यहां दुःख पाते हैं ।
सिर पीट-पीट कर हां आंसू बहाते हैं ॥७॥

ईश्वर ! वैसी स्थिति जब होतीं रहती हैं ।
तब भी क्यों वे वासना नहीं छोड़ते हैं ॥
तो क्या वे मंहगे दिन नहीं गुजारते है ।
क्या दुष्कर्मी, वाचने के फल नहीं खाते हैं ॥८॥

मुहुर्त बिना गौतम गढ़ से भाग गए ।
और शुभ दिन विना ही ज्ञान भी पा गए ॥
ज्ञान से संसार को वे जगमगा गए ।
मुहुर्त वाले जहां के तहां दवे रह गए ॥९॥

आदमियों में जो कोई कुलयोगी होते हैं ।
मुहुर्त बिना आसमान में विराजते है ॥
भले देह, उनके, भूमि पर चलते हैं ।
पर चित्त शून्य में ही विहार करते हैं ॥१०॥

ये सूरज चांद के यहां प्रकाश पाते हैं ।
उनके बिना ही यहां वे उजाला पाते हैं ॥
वे लोक परलोक एक आंगन पाते हैं ।
जिसके बीच में लकीर भी नहीं पाते हैं ॥११॥

काल के पार काल रहित में मिल जाते हैं ।
काल के अन्दर निज कुल में जन्म लेते हैं ॥
कुल से कुलेश्वर तक वे आते हैं जाते हैं ।
कुलज्ञ कोल का सिलसिला ऐसा ही होते हैं ॥

— : —

नोटः—कोई दिन कभी भी एक समान, किसी के लिए भी नहीं हो सकते हैं । जैसे—सोम, सोम, एक समान नहीं हो सकते हैं । मंगल मंगल या बुध बुध एक समान नहीं हो सकते हैं । काल के अन्दर- जन्मने वाले काल के अन्दर ही जन्मते ह । काल रहित - जो जन्मते ही नहीं है, वे काल के पार (beyond time or timeless) हो जाते हैं । हे पुत्र ! काल के अन्दर से काल के पार । - काल रहित में पहुंचने के लिए सूकर्मयुक्त साधना कीजिए । आपको मुहुर्त की कोई आवश्यकता नहीं होगी ।

हरिजन और मन्दिर

यह कोई चोट नहीं किसी भी व्यक्ति पर ।
चोट है केवल हर के सत्य की उक्ति पर ॥१॥
मन्दिरों के पूजारी कहलाते हैं ब्राह्मण ।
मन्दिरों से तिरस्कृत कहाते हैं हरिजन ॥२॥
बड़ी अजीब लगती ये परिभाषाएं हैं ।
जान बूझकर ठुकराते मानो आशाएं हैं ॥३॥

एक पूर्ण समझ के हो जाते घमण्डी हैं ॥
दूसरे निम्न समझ के हो जाते शिखण्डी हैं ॥४॥
दोनों गुण उपयुक्त नहीं ये शास्त्रोक्ति है ।
ब्रह्म को जान सकने के ये गुण अभ्यूक्ति है ॥५॥
तप के बिना जान सकते नहीं ब्रह्म को ।
योग बिना पहुंचा सकते नहीं मन को ॥६॥
आप न तो योगी हैं, और न तपस्वी हैं ।
चाल ढाल से भी लगते नहीं तेजस्वी है ॥७॥
तब स्वयं को ठगने और ठगाने समाज को ।
कैसे कोई कहाते हैं ब्रह्मण अपने को ॥८॥
जो ब्रह्म में ही देखते है सभी जीवों को ।
सभी जीवों में ही देखते हैं जो ब्रह्म को ॥९॥
ऐसे गुणी कहाते नहीं ब्रह्मण स्वयं को ।
अनायास ही लोग कहते ब्रह्मण उनको ॥१०॥
महात्मा जब कह गए आपको हरिजन ।
क्यों, नहीं, हर में जगाते हैं अपनापन ॥११॥
न डोम, चमार, मेहरा और न पासवान ।
एक शब्द में समाए हम सब हैं हरिजन ॥१२॥
सब पीड़ा हरन करते जो हरि कहाते हैं ।
जन पीड़ा हरते जो हरिजन कहाते हैं ॥१३॥
स्वार्थ हीन जनसेवक जब विदा होते हैं ।
तप के बिना भी स्वतः ही ब्रह्म पा जाते हैं ॥१४॥

किन्तु जिन्दगी में ब्रह्म स्पर्श जो पाते हैं ।
सही में ब्रह्म को वैसे ही योगी जानते हैं ॥१५॥
इसी कारण तो रामो यह शिक्षा दे जाते हैं ।
जिसे अपनाते ही ब्रह्मण बन जाते हैं ॥१६॥
शरीर से बढ़कर कोई मन्दिर नहीं है ।
शरीर के जीव जैसा भी कोई देव नहीं है ॥१७॥
ब्रह्म के शक्ति के अंश ही देह के जीव हैं ।
सभी जीवों के जीव ही वे परम जीव हैं ॥१८॥
अपनी जीव ही किन्नर देव बन जाते हैं ।
स्मसान में महादेव भी उन्ही से खेलते हैं ॥१९॥
अतः निज देह के निज देव की चिन्ता करें ।
नाखुश हो भाग न जाएं उसीकी चिंता करें ॥२०॥
स्वच्छ देह के शुद्ध कर्मों से वे खुश होते हैं ।
गन्दे देह के गन्दे कर्मों से नाराज होते हैं ॥२१॥
यही जानके ज्ञानी स्वयं संतुष्ठ होते हैं ।
मन्दिरों का कभी नहीं परवाह करते है ॥२२॥
निज देह में देवों की जो पूजा करते हैं ।
महादेव का भी अन्तः पूजा करते हैं ॥२३॥
देवों का शास्त्र संगत एसी पूजा जो करते है ।
जात से पर रे ब्रह्म स्वरुप हो जाते हैं ॥२४॥
ऐसा ही आत्म विश्वास क्यों नहीं जगाते हैं ।
ऐसी भक्तिसे जग को क्यों नही चौकाते हैं ॥२५॥

न कोई ब्रह्मण, न कोई हरिजन है ।
कर्म के मुताबिक सभी पाते सुखी जीवन है ।२६।
लेकिन उत्तमों में भी उत्तम वही जन है ।
जो बनाते अपने घर को ही तपोवन है ॥२७॥
देह की, मन की वो कर्म की पवित्रता को ।
घर की रसोई की, वो वस्त्र की सफाई को ॥२८॥
हरदम कायम रखते जो आदम हैं ।
सही में बनाते अपने घर को ही धाम है ॥२९॥
ऐसी अवस्था में जो मनाते कुलधर्म है ।
कहते उसी का संसारिक जिंदगी पूर्ण है ॥३०॥
जो इस सूक्त का रोज मनन करते हैं ।
मन प्रफूलित और सरल हो जाते हैं ॥३१॥
जन्म मरण के बंधन से मुक्ति पा जाते हैं ।
जीव सहित शरीर भी अमर हो जाते हैं ॥३२॥

— : —

ग्रहण

यहां आने के पहले का पता नहीं है ।
यहां से जाने के बाद का भी पता नहीं है ॥१॥
आने जाने के बीच का पता यही है ।
हक किसी एक दम्पति के पुत्रनयी है ॥२॥

इसके बाद में क्या है ? हमें पता नहीं है ।
पर बड़ा होकर हमारा पता यही है ॥३॥
हम ब्रह्मण क्षत्रिय वैश्य और शुद्रा हैं ।
जैसे कि मानो टकसाल के ही मुद्रा हैं ॥४॥

यह जात का बात क्या, कुछ भी सही है ?
जिसे समाज ने हमेशा बहुत कही है ??५??

जैसा हमने अब तक उसे समझा है ।
निश्चय ही हमने गलत समझा है ॥६॥
हरेक के जिंदगी का सही बात यही है ।
जिसे ऋषियों ने शास्त्रों में पहले कही है ॥७॥

चित्त शरीर में जब प्रवेश पाता है ।
पूर्व के जन्म का छाप लेकर ही आता हैं ॥८॥
अतः बालक अपरिचित ही जन्मता है ।
चाहें किसी के घर में ही वह जन्मता है ॥९॥

यद्यपि अपनी मां से वह जन्मता है ।
प्रथम गोदी चमईन का वह पाता है ॥१०॥
भाग्यशाली तो वही पुत्र कहलाता है ।
जिनको प्रथम गोदी मां का ही मिलता है ॥११॥

अशुद्ध मान उसे अलग रखा जाता है।
छट्टी में शुद्र कर ही चुम्मा किया जाता है ॥११॥
अशुद्ध जन्म से हम होते शुद्र जन्मा है।
इसी से तो कहलाते हम द्विजन्मा हैं ॥१३॥

बालापन के बाद जो किशोरावस्था है।
सही में ज्ञान पाने का यही अवस्था है ॥१४॥
वैदिक ज्ञान जिनको होता क्षिप्र है।
उसी को लोग सम्बोदन करते विप्र हैं ॥१५॥

इसके आगे जब पाते ब्रह्म ज्ञान हैं।
लोगों के द्वारा कहलाते ब्रह्मण हैं ॥१६॥
अज्ञान का लगा समाज में ग्रहण है।
ठीक वैसा, जैसा सन अस्सी का ग्रहण है ॥१७॥

हरेक के जिंदगी के वही चार स्तरें हैं।
पर साधना के द्वारा हो पाते उच्च स्तरें हैं ॥१६॥
हम फूलों की सी धरती पर छितरे हैं।
जैसे चांद तारे आसमान में बिखरे हैं ॥१८॥

प्रथम जन्म के सभी होते शुद्र जन
ब्रह्म ज्ञान पाकर ही बन जाते ब्रह्मण हैं ॥२०॥

—:—

नोट—आने=जन्मने । जाने=मरने। यहां=इस लोक में।
क्षिप्र=जल्दी ।

Note—Stages of life—

Sudra-by birth. Dwija-after the purification ceremony. Vipra-when versed in Vaidic knowledge. Brahmana-when Brahma is known and experienced.

किन्तु केवल ब्रह्मण शब्द से किसी को इस शरीर की जिंदगी में फायदा पहुंचने की उम्मीद नहीं है। केवल कर्म शब्द से ही फायदा पहुंचने की उम्मीद है। और जिंदगी के बाद जीव (आत्मा) के जीव में कर्म एवं ब्रह्मण शब्दों के सयोग से ही फायदा पहुंचने की उम्मीद है। इस कारण हरेक के जिंदगी में कर्म एव ज्ञान का संयोग होना ही चाहिये।

—:—

प्रेमिका से

कहीं दूर के स्वतंत्र मन से,
तुमने मुझसे प्यार चाही ।१।
या निकट के मजबूर मन से,
तुमने मुझसे प्यार चाही ।३।

किंतु सरल किशोर मन से,
न समझा कि तुमने क्या चाही ।३।
या संस्कारहीन संगति से,
न जाना कि तुमने क्या चाही ।४।

....

पंडित ने राँख बजाया,
क्या ध्वनि कहीं टकरायी ।५।
मंडप के करतल ध्वनि,
शायद दिलों को न छू पायी ।६।
पर एक दूसरे को मिलाने,
लोगों ने बहुत भीड़ लगायी ।७।
पंडित सहित हरेक ने,
खुशियों की खूब धूम मचायी ।८।
मुहुर्त बिना जन्मे दो काया,
आखिर मुहुर्त में मेल खायी ।९।

....

यह जुड़ा सम्बन्ध कायों का,
मैं न समझा मतलब इसका ।१०।

....

दिन बीते वो बीती घड़ियाँ,
उम्र के साथ ही बीती खुशियां ।११।

पर एकान्त के चिन्तन से,
जो ज्ञान अभी जिंदगी में पाया।१३।
मैंने स्वार्थवश ही तुमसे,
मर्द होने का एक लाभ उठाया।१४।
पर पाप भरा मन से,
दो चितों को न मिला पाया।१५।
ऐसे में केवल तुमसे,
मैंने तन का ही कम्पन मिटाया।१६।
चारो ओर जब मैंने देखा,
बस यही एक तमाशा पाया।१७।
अजब है यह दुनियादारी,
मिलती है जहां काया से काया।१८।
फिर फायदा उठाती है जहां,
कोमल काया से कठोर काया।१९।

....

मर्द के पशुवृत्ति के सामने,
उसने भी मात्र झुक कर शर्माया।२०।
दुःख का समय आने पर
आंसू तक भी न गिरा पाया।२१।
पर बदले में पिंड छुड़ाने
कोमल काया को उसने फेंक बहाया।२२।

....

दोष केवल इतना ही था,
हमने आत्माओं को नहीं मिलाया ।२३।
दोष केवल इतना ही था,
पंडित नेभी चितोको नहीं मिलाया ।२४।
वंसा किए बिना मिलकर,
क्या-हमने अपनों को नहीं ठगाया ।२५।
वैसा करके हे भगवान,
क्या-हमने तेरा रोष नहीं जगाया ।२६।
इस दुनियां में आने का,
क्या-हमने अपना मजाक नहीं उड़ाया ।२७।

....

विधाता की रीति सदा,
कई युगों से है, होता आया ।२८।
अपने आप आती जाती है
पंच तत्वों का यह नर्म काया ।२९।
हाँ कोई आगे कोई पीछे
विदा होते लेकिन सभी काया ।३०।
सुन्दर से सुन्दर तक भी
अभी तक नहीं ठहर पाया ।३१।
ऐसा जानकर भी मिलन का
मतलब कोई नहीं समझाया ।३२।

पंडित ने झोली भर कर
कभी ताकने फिर नहीं आया ।३३।

....

मिलन बिछुड़न के आंगन में
अपने को हम अकेला पाया ।३४।
चलो आज करे हम निश्चय
चाहे पहले छोड़े जो भी काया ।३५।
तेरी आत्मा की मैं पूजा करूँ
जब तक रहे यह मेरी काया ।३६।
मेरी आत्मा की तुम पूजा करो
जब तक रहे वह तेरी काया ।३७
कायों से छूट कर अन्तिम में
मिलेंगे हमारी आत्मिक काया ।३८।
साथ चलेंगे मिलने उनसे
जिसने हम दोनों को जन्माया ।३९।
आत्माओं की काया में मिलकर
लूटेंगे खुशी जो किसीने नहीं पाया ।४०।

— : —

नोट—सन् १९७३ के अगस्त में, बैसी (पूर्णिया) के निकट, फरमान नदी के पुल के एक खम्भा में अटकी एक अनजान नव युवती की लाश को देखने से जगी भावनाएँ । उसी

की यादगारी में।

नोट - तुमने, मुझसे, मैं एव मैंने, से मतलब है एक अनजान पाठक। पद्य १ से ४ तक गन्धर्व विवाह और ५ से ६ ब्रह्म विवाह से सम्बन्धित है। आत्माओं का काया— परमात्मा का परम सूक्ष्म काया।

— : —

अकेला

आदमी ने आदमी को मिलाया,
और समझा कि हमी सब कुछ हैं।
एक नर ने भी नारी को पाया,
और समझा कि हमी सब कुछ हैं।
इसी कारण होते हैं जग में,
जात कौम बनने के कई टुकड़े।
इसी कारण होते हैं जग में,
भाईयों के संग भाईयों के झगड़े।
पर बात यह निश्चय जानिए,
गिरोह में भी आप नहीं कुछ हैं।
फिर इससे आगे की जिंदगी में,
नारी संग भी आप नहीं कुछ हैं।
इसी कारण तो लोगों को,
अकेले ही यहां से जाने पड़े।

स्वर्ण सुरा और सुन्दरी बिना
कब्रगाहों में आखिर लेटने पड़े।
लेकिन ऐसा भी तो नहीं होता
शुन्य, महाशुन्य में भी नहीं कुछ है।
संसार के प्रलोभनों से परे
स्वच्छ जीवन में भी नहीं कुछ है।
इसी कारण तो आसमान में
जग के मालिक भी है अकेले पड़े।
इसी से तो उनके दूतों को भी
अकेले ही आने और जाने भी पड़े।
वैसा जानकर ही तपस्वी
उनके जैसा अकेले सब कुछ हैं।
वैसा जानकर ही गृहस्थ
योगी हो दुकेले भी सब कुछ हैं।

— : —

ये भावनाएं दिनांक २३/८/७६ को बस सर्विस द्वारा पटना पहुंचने के समय मन में जगी थी।

नोट :— मालिक - ईश्वर। उनके - ईश्वर। योगी - कुलयोगी गृहस्थ कोल सब कुछ हैं। अन्य नहीं कुछ हैं।

Question ?

Why have you admired female form more than the Male form ?

Don't you know Male is Superior to female ?
asked Shri Rameshwar Birua,

My dear brother, listen me patiently. It is because, female form is more active in Creation, rather than the male form. This is erident from the fact, that the Male can not get excited without a femal.e

A midst the fragrance of specially created Spring, the Cupid appeared before Lord Shiva in the form of a Kamini, to arouse His excitation.

Answered Ramo, and his elder brother kept silent.

Note : Cupid - God of Love. Kamini - Lust ful woman.

ना री

यह किसने कहा है अर्धनारीश्वर
कि नारी रूप है तेरा अबला ।
यह किसने कहा किस्मत में
केवल आंसूओं का है बुलबुला ।
कहा होगा किसी ने यहां
देख कर समाज का सिलसिला ।
जाना नहीं वे सृष्टि तेरा
आखिर सब तो है मनचला ।
सन्तोष रहित लोलुपता
बसतो है जिनके दिल में ।

स्वार्थ युक्त दुषित भावना
की कालिख है जिनके मन में ।
दशों इन्द्रियों से पराजित
बुद्धि है जिनके दिमाग में ।
बेचारे वे समझते कैसे
शक्ति, बला अबला है नारी में ।
सोने की सोनार लेती परीक्षा
अंगेठी के आग में कर गला ।
वीरों की दैव, लेती परीक्षा
मोहक नारी से कर मुकाबला ।
देखिए महाशय. सामने,
नारी के लचक चालों की कला ।
क्या दहल जाता नहीं
आंधी बिना आपका दिल भला ।
अब ऐसे में सोचिए जरा
नर रूप ही जब है सड़ा गला ।
तब फिर कैसे कहते हैं
महाशक्ति के नारी रुप है अबला ।

— : —

नोट :— महाशति–Supreme Power. अर्धनारीश्वर- One none–dual (stage in the evolution of the Supreme; in which the supreme is neither male not female)

वीर भाव—आदमी के तीन भाव होते हैं। (१) पशु भाव; (२) वीर भाव, (३) दिव्य भाव। साधक कमोन्नति से पशु भाव से उपर वीर भाव में पहुंचता है। और पशु एवं वीर भावों से लड़ाई करते हुए वीरता के साथ दिव्य भाव में पहुंचने का कोशिश करता है। दिव्य भाव में पहुंचकर वह देव हो जाता है।

—: चिंतन :—

सोचता हूं.....कि.....

मैं अपनी मर्जी से इस ससार में आया हूं ?
या किसी दूसरे के मर्जी से यहां मैं आया हूं ?
मैं आकर भी किनके मर्जी पर जीता हूं ?
और अंत समय आने पर..... ? ? ?

मैं किनके मर्जी पर जाऊंगा ? कहां जाऊंगा ? किनके पास पहुंचुगा ? और किनमें प्रवेश करूंगा ?.....

....

जाहिर है कि एक मालिक कहीं पर है, जिनके मर्जी से जिनके पास से, संसार में सभी आते हैं....जीते हैं....जाते हैं।

किन्तु जिन्दगी से विदा होकर, पहुंचने का ठिकाना तो, साधारण जन, जान नहीं पाते हैं। पवित्रता में जो योग करते, हैं, सन्यासी होते हैं—वही जान पाते हैं। मृत्यु के समय

भिन्न धर्मों के ठीकेदार सहित सभी सगे सम्बन्धी, खड़े देखते रह जाते हैं। एक बार सिर उठा, उपर को ताका, फिर

लुढ़क गया। आमतौर पर सभी साधारण जन, इसी प्रकार ही, शरीर त्याग कर विदा होते हैं। और विवेक ज्ञान बिना अंधकार में ही खो जाते है। फिर तो, उत्तराधिकारी भी, उनके सम्बन्ध में नही जान सकते हैं। क्योंकि उनका खोज नहीं कर सकते हैं।

....

किन्तु माता-पिता के सिलसिले में पित्तरों के पुजारी, सुशील कुलाचारी पुत्र का विदाई दूसरी तरह से होता है। वे जिन्दगी को याद करते हुए यह कह कर विदा होते हैं—

अब विदा ऐ प्यारा संसार।
हैं ! प्यारी मां प्यारा धरोहर ॥
पाली थी मुझे लहलहाकर।
फुसलाई थी दूध पिलाकर ॥
मातृ ऋण का बोझ लाद कर।
देख लूं तुझे मैं अन्तिम बार ॥

विदा लेने के इस वेला में, अपना ध्यान; इस संसार (मृत्यूलोक) से उस संसार (परलोक) में ले जाते हुए.....

पहुंचु दिव्य मां के गोदी पर।
कहते जिसे मालिक ईश्वर ॥
माँ दिव्य ! स्वयं में एक हो कर।
कहलाते हैं, अर्धनारीश्वर ॥
मेरे अन्तिम निवास के घर।
अपना एक दूत भेज कर ॥

विदाई की वेदना न करा कर ।
लिए जा मुझे फुसला कर ॥

यहां से वहां - वहां से यहां - दोनों लोकों में, अपना ध्यानको प्रसारित करते हुए, और बची कुची द्विविधाओं पर चिंतन करते हुए - कुलाचारी.....

इतना तक तो आया मन पर ।
तेरे सम्बन्ध का ज्ञान है अपार ॥
लेकिन यह न आया जी पर ।
समझाया न कोई यहा पर ॥
केवल एक तेरी मर्जी पर ।
जब आना जाना है धरा पर ॥
तो माँ ! धर्म के ये ठेकेदार ।
मनमौजी के नियम हजार ॥
लादे थे कमर कड़ी कस कर ।
अपनी मर्जी से क्यों - दूसरों पर ॥

इसी संशय की पृष्ठभूमि में झूलता हुआ, अपना मन को बटोर कर, दिव्य माँ में ही केंद्रीभूत करते हुए—कुलाचारी...

जाता हूं माँ, बुलाहट पर ।
उलझन यह समझे बगैर ॥
क्यों—ये बनते हैं ठीकेदार ।
करने को धर्म का व्यापार ॥
क्या—माँ के गर्भ से बाहर ।
जन्मे थे कहीं ये ठीकेदार ॥

क्या-माँ के गोदी से हट कर ।
पले थे नली के किनारे पर ॥
क्यों - शर्माते हैं सयाना होकर ।
होठों पर लाने को माँ का स्वर ॥

अव्यक्त आनन्द और शांति के साथ अन्तिम क्षण गुजारते हुए, अपनी आँख एवं अन्तिम सांस बन्द होने के पहले···ये हिदायत कह जाते हैं.....

शान्ति मिलेंगी नहीं कहीं पर ।
खुलेंगे नहीं स्वर्ग के भी द्वार ॥
पायेंगे कनम कदम पर ।
दुःख दर्द वैसे अधम नर ॥
....

अलविदा, ऐ, प्यारा संसार ।
चला मैं, माँ के बुलाहट पर ॥
ओम, शांति शांति शांति.....

— : —

नोट :— माँ - प्राकृत माँ, अपनी माँ ! माँ - धरती माँ ।
माँ - दिव्य माँ - सभी माँओं की माँ - सभी की माँ ।
हरेक हम सभी की तीन माँ हैं ।

मेरे पूज्य चाचा स्व० परदान विरुवा के मत्यु के सम्बन्धित, उन्ही की स्मृति में, उन्ही को समर्पित ।

चाहे जिस भिन्न धर्म के बहकावे में भी कोई हो—इतनी बात तो सत्य है, कि हम सभी यहां की जिन्दगी में जब उतरते हैं, तो अपनी माँ की गोदी पर उतरते हैं। याने अवतरित होते हैं।

उसके बाद जिन्दगी भर धरती माँ के वृत्त स्थल पर बिहारते हैं। अपनी माँ का दूध बचपन में पीते है। और बड़ा होकर धरती माँ का दूध, अन्नों के रूप में, फलों के रूप में, हम खाते हैं। यहां की मृत्यु के बाद, वहां (परलोक में) हम पुनः जन्म लेते है। और दिव्य माँ (Divine Mother) की गोदी पर पहुंचते हैं।

अतः हमारी तीन माँ हैं। ऐसा ज्ञानी कुलाचारी पुत्र को फिर मृत्यु का भय हीं, क्या भय है? मेरे चाचा जी ने जाने की प्रबल इच्छा प्रगट की थी। और हमारे नहीं चाहने पर भी; वे स्वेच्छा से चले गये हैं। अतः उनके इच्छा की ही जीत हुई थीं।

धार्मिक लक्ष्यों की सीमा

साधारण तौर पर, विभिन्न प्रचलित धर्मों के अन्तर्गत बहुत सारे धर्मावलम्बियों के लिए—स्वर्ग की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति—धार्मिम लक्ष्य की एक सीमा है।

इसये लिए आधार भूत ज्ञान—अक्छे कर्मों के द्वारा स्वर्ग को प्राप्ति है। मोक्ष की प्राप्ति है। और बुरे कर्मों के द्वारा नरक की प्राप्ति है।

और उन भिन्न धर्मों के, कुछ धर्मावलम्बियों ने जैसा बताया; कि स्वर्ग, मोक्ष एवं नरक के आगे तो शून्य (void) है। कुछ नहीं है।

इसी तरह के विश्वास पर ही साधारणतया बहुत सारे लोग जीते है। और कर्म करते हैं। दैनिक शारीरिक कर्म करते हैं। क्योंकि इतना तक का ज्ञान, हरेक व्यक्ति के लिए बिना मेहनत का ज्ञान है। महज मामूली धार्मिक चर्चाओं में प्राप्त होने वाली ज्ञान है। अतः एक अन्दाजो ज्ञान है। क्योंकि इतनी भर के ज्ञान से सृष्टि के प्रति अपना कर्तव्य समझ में नहीं आ सकता है।

स्थिति को एक मुस्त में इस प्रकार भी समझा जा सकता हैं। नीचे से ऊपर:—

— है शून्य है —

इसके आगे तो केवल—

स्वर्ग है	मोक्ष है	नरक है	;;
बाद	बाद	बाद	;;
के	के	के	;;
मृत्यु	मृत्यु	मृत्यु	;;

अगर इसे सही मान लिया जाए, तो वैसी हालत में, वैसे भिन्न धर्मों के अन्दर, किसी अनुयायी की आत्मा मृत्यु के बाद स्वर्ग या नरक में, सदा के लिए अटक जाती है। या पुनर्जन्म से परे, उसे मोक्ष भी मिलता है ती शून्य में, व्योम में, सदा के

लिए खो जाती हैं। या मृत्यु के बाद, उनकी आत्मा का जन्म पुनर्जन्म भी हो रहा हो तो, उसका अन्दाज, उसका पता, उसी के उत्तराधिकारी को नहीं हो पाता हैं।

ऐसा लगता हैं कि आसमान में, व्योम में, अन्तरिक्ष में, स्वर्ग में एवं नरक में, मृतकों के आत्मा-शालाएं हैं। ठीक वैसा ही जैसा कि जमीन पर शहरों के निकट बुढ़े पशुओं के लिए गोशालाएं हैं। और फिर मोक्ष तो मृतक के आत्मा के मुक्त होने की एक ऐसी स्थिति है, जिसमें सदा के लिए किसी से कोई लगाव नहीं है।

ये सभी ऐसी स्थितियां हैं, कि जिसमें मृतक के उत्तराधिकारी सम्बन्धी, पूजा, प्रार्थना, होम, यज्ञ के धार्मिक विधियों के बल से, मृतक शरीर से मुक्त आत्मा को गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देने का कोशिश करते हैं। आत्मा को इस खूंटा (मृतक के शरीर) के छूट जाने पर दूसरा नया खूंटा (नया शरीर) पकड़ा देने का भी कोशिश करते हैं। गरूड़ पूराण के विधियों के द्वारा कोशिश करते हैं। इन प्रयासों में सफलता मिलती हो या नहीं मिलती हों, पर यह निश्चित है कि उत्तराधिकारी अपने यहां से मृतक आत्मा को पंडित, मौलवी एवं पादरी के जरिए, अवश्य खदेड़े देते हैं। चाहे मृतक आत्मा जहां भी पहुंच जाएं।

ठीक वैसा हो जैसा, बुढ़ा बैल एवं बुढ़ी गाय को घर का मालिक, अपने घर से, नौकर के जरिये, निकट के गोरक्षिणी में खदेड़वा देते हैं। और उसके बाद कोई खोज खबर लेते ही

नहीं हैं। उन्हे पहले के अपने मालिक से एवं अन्यों से कोई मतलब ही नहीं।

उसी प्रकार उत्तराधिकारी भी, स्वर्ग के आत्मा-रक्षिणी के पास उनका निज सम्बन्धी आत्मा पहुंच गया हैं अथवा नहीं, सही हालत में है अथवा नहीं, इसका पता लगाते ही नही है। जब पता लगाते ही नही हैं तो आत्मा रक्षिणी से अपने सम्बंधी आत्मा को हिफाजत के साथ रखने के लिए आग्रह करने का सवाल ही नहीं उठता है।

अब जरा सोचिए कि वैसे भिन्न धर्मों में धार्मिक आस्था (faith) रखने वाले अनुयायियों की आत्माओं की, मृत्यु के बाद क्या दुर्दशा होती होगी, अन्दाज नहीं किया जा सकता है। अगर यही स्थिति आपको सुहाता है, तो उसी तरह के धर्म निष्ठा में, आपको पड़े रहना चाहिए। क्योंकि, उसी तरह के स्थिति के आप भागी हैं। स्वर्ग; नरक एवं मोक्ष के प्राप्ति का ज्ञान देने वाली भिन्न धर्मों के अनुयायी अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए :—

(१) अवतारी, पैगम्बर, एवं ईश्वर पुत्र को ही इष्ठ देव बनाकर एवं मानकर, उनका संरक्षण, उनका मदद, पाने की कोशिश करते हैं।

(२) उनके जिन्दगी के चरित्र से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। उनके नाम का भजन कीर्तन करते हैं।

(३) उनके नाम पर चलाए जारहे संस्थाओं के मन-गढ़न्त

नियमों के मुताबिक, रहन-सहन खान-पान, के रस्म रिवाजों में अपने को ढालने का कोशिश करते हैं ।

(४) उन्होंने जो किया था, उनमे से, कुछ सरल कार्यों को नक्ल कर अपने जिन्दगी में दुहराने की कोशिश करते हैं ।

उसी तरह के जिन्दगी के, एक दायरे में, काम करते हुए, संसारिक व्यवहार करते हुए, गैर-सम्बन्धी अवतारियों से, पैगम्बर, से, ईश्वर पुत्र से, तपस्वियों से, अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद पाने की उम्मीदे करते हैं ।

अतः इसमें, एक सीमित समझदारी है, सीमित ख्याले है और इन्हीं के अन्दर एक सीमित लक्ष्य है । ज्ञान रहित, वुद्धि से इसमें, केवल दूसरों (पंडितों, मौलवी एवं पादरी) का अनुशरण करना है । तर्क के बिना ही, अनुशरण करते जाना है, और तर्क के विना ही मानते भी जाना है ।

क्योंकि वैसा ज्ञान देने वाली भिन्न धर्मों के अन्दर-पुत्र के द्वारा पित्र आत्मा को, मातृ आत्मा को, स्वर्ग में, नरक में, शून्य में एवं व्योम में, खोजने, और खोजकर, सदा सम्पर्क बनाए रखने, और अपने ही रसोई में बुलाकर, सदा भोजन पानी आदि के भोग अर्पण से सदा सेवा करते रहने का धार्मिक विधान नहीं है । ऐसे में दिवंगत माता विता के आत्माओं से पुत्र का आत्मिक सम्बन्ध बिलकुल टूट जाता है। और वैसा मत अपने ही निज सम्बन्धियों से स्थायी सम्बन्ध विच्छेद हो जाने का एक कारण है । अपना अपनी अलग व्यवहार हाने का एक कारण है ।

किन्तु यहां सोचने की बात है कि अपने ही निज संबंधी माता-पिता एव अपने ही जन्म के सिलसिले के अन्य पित्तर आत्माओं के साथ का अपना सम्बन्ध जब कटा हुआ है, उनके साथ का सन्पर्क ही जब सम्भव नहीं है, तो गैर सम्बन्धी, अवतारी पैगम्बर आदि महान आत्माओं के साथ अनुयायी का सीधा सम्बन्ध कैसे जुट सकता है ?

आदिवासियों—आपके अपने परिवार से, अपने वंश से, अपने कुल से, लेकर दैविक कुल के, कुलेश्वरी तक के विशाल वृहद ब्रह्माण्ड के पूर्ण ज्ञान, जिसमें पित्तरों सहित सभी महान आत्माएं सभी देव आत्माएँ समा जाते हैं के मुकाबिले में ये भिन्न धर्मों के सीमित ज्ञान, क्या नगण्य सा नहीं मालूम पड़ते हैं ?

सृष्टि के प्रथम आरम्भ होने के दिन से, आपके ही पूर्वजों के सिलसिले में, चली आ रही आपके पौराणिक परम्परा में, अपमे ही जन्म के सिलसिले के निज कुल के निज पूर्वजों के पूजा अर्पण का दैविक दृष्टि से जितना तर्क सँगत, जितना सुन्दर सा विधान है, वैसा विधान कहीं किसी भिन्न धर्म में नहीं है। और इस विधान के अन्दर पूजा जितना तत्काल फलदायक है, वैसा कहीं नहीं है। भिन्न धर्मों में आत्मिक सिलसिला कही नहीं है, दैविक सिलसिला नहीं है। और आत्मिक सिलसिला के साथ दैविक सिलसिला को जोड़ने का दैविक एवं धार्मिक विधान नहीं है।

ऐसे में अपने पवित्र परम्परा को त्यागकर, दूसरे क्षेत्र के

दूसरे गैर-सम्बन्धी, मात्र एक आत्मा का मात्र एक, भजन-कीर्त्तन; क्या जाने कैसा तो लगता है । बिलकुल असंगत सा लगता है ।

अब, आप ही को विचार करना है, कि आपको, इतने मूल्यवान अपने ही परम्परागत कुलधर्म (Gene-lsm) में बने रहना उचित है ? अथवा सिलसिलाहीन, भिन्न धर्मों के नए ढांचे में आपको ढलना उचित है ?

भिन्न धर्मों में तो पता विहोन खूद आप ही ढल कर जल जायेंगे ।

....

—: सिद्धान्त :—

बुद्ध का रास्ता गलत नहीं है ।
और न महावीर ही गलत हैं ॥१॥
वे त्यागी की बात बतलाते हैं ।
सन्यास की बात सिखलाते हैं ॥२॥
लेकिन आप तो शादी—शदा हैं ।
परिवारिक जिन्दगी बिताते हैं ॥३॥
ऐसे में उनके उपदेशों का ।
बचनों, भजनों, आदेशों का ॥४॥
आप पालन नहीं कर पाते हैं ।
मात्र मुंह में रटे रह जाते हैं ॥५॥
अतः साधुओं की सेवा कीजिये ।
जिन्दगी का यों कर्त्तव्य निभाईये ॥६॥

लेकिन आप तो तभी आए हैं ।
जब माता-पिता तुझे बुलाए हैं ॥७॥
बुलाने का क्या प्रयोजन है ।
माता-पिता का क्या अरमान है ॥८॥
यह जानना ही तेरा धर्म है ।
इसे पूरा करना ही तेरा कर्म है ॥९॥
पिता ने माँ को प्यार किया ।
माँ के मुश्किलों को दूर किया ॥१०॥
इस तरह मंच तैयार हुआ ।
आने का मार्ग प्रशस्त हुआ है ॥११॥
यह नहीं कोई अनीति है ।
सृजन की ऐसी ही रीति है ॥१२॥
ईश्वर सभी के जन्म दाता है ।
और सभी के पालन कर्त्ता हैं ॥१३॥
पर आपके तो माता जन्मदातृ हैं ।
दूध पिलाकर पालन कर्तृ हैं ॥१४॥
ईश्वर की कृपा आई माता को ।
तो उसने धारण किया आपको ॥१५॥
और ईश्वर की कृपा पाकर ।
माँ ने प्रगट किया तुझे धरा पर ॥१६॥
इसके अलावे भी क्या रिश्ता है ।
जिसकी तुझे कोई चिन्ता है ॥१७॥

अन्य रिस्ते जो बनाए जाते हैं ।
वे बनते और टूटते रहते हैं ॥१८॥

आज जीते हैं या कल मर जाते हैं ।
इसकी क्या परवाह करते हैं ॥१९॥

इस जन्म तो क्या उस जन्म में ।
इस लोक में तो क्या परलोक में ॥२०॥

माता पिता का अपना रिस्ता है ।
किसी जन्म में नहीं टूटता है ॥२१॥

इसी कारण तो मैं कहता हूँ ।
दायित्व निभाना समझाता हूँ ॥२२॥

तू जीवन भर का प्रण करें ।
माता पिता न कभी आह करें ॥२३॥

प्राकृतिक तन या आत्मिक रहे ।
माता पिता कभी न भूखे रहें ॥२४॥

पवित्र रहकर पवित्र रसोई करें ।
इसी का उनको भोग दिया करें ॥२५॥

न पूजा न कीर्त्तन करना है ।
नित्य इसी का पालन करना है ॥२६॥

यही जीवन का एक धर्म है ।
अपने कुल का अपना भी धर्म है ॥२७॥

इसका जब आप पालन करते हैं ।
तो जीवन का कर्त्तव्य निभाते हैं ॥२८॥

पित्तरों की जो सेवा करते हैं ।
आत्मा को खुद ही शुद्ध करते हैं ॥२९॥

इसमें किसी का नहीं मुहताज है ।
अपने कुल का अपना ही नाज है ॥३०॥

जिनको जड़ में ही विश्वास है ।
उनको डाल से क्या मतलब है ॥३१॥

जड़ से ही सभी रस पाते हैं ।
ऐसा कोल ही समझ पाते हैं ॥३२॥

हाथी के पांव जब पड़ते हैं ।
अन्य पदा-चिन्ह छिप जाते हैं ॥३३॥

जितने सिद्धात बताये जाते हैं ।
कुल धर्म में सब समा जाते हैं ॥३४॥

जो कुल धर्म नहीं करते हैं ।
मां-बाप का गला घोटते हैं ॥३५॥

ऐसे पापी जब चिल्लाते हैं ।
तो ईश्तर क्या माफ करते हैं ॥३६॥

— : —

सत्य एवं तथ्य की खोज

इन धार्मिक लक्ष्य स्वर्ग, मोक्ष एवं नरक के आगे शून्य है। यह बात सही है। लेकिन अधुरा हीं सही है। क्योंकि शून्य के आगे, उत्तरोत्तर उपर व्योम की ओर तो महाशून्य है। यही

शून्य एवं महाशून्य तापरहित प्रकाश में हैं। और शून्य के बाद के महाशून्य में हीं, सृष्टि के सब कुछ है। इसी महाशून्य से ही सृष्टि के सब कुछ का अन्तिम अंत भी है।

लेकिन लोगों का यह धारणा गलत हैं कि शून्य में कुछ नहीं है। अगर इसे सही मान लिया जाय, कि शून्य में कुछ नहीं हैं तो महाशून्य में कुछ होने की बात की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

किन्तु आप इस बात को माने या नहीं माने, ये सब तो ज्ञान के आगे, कला ज्ञान और विज्ञान, के बहुत आगे, विवेक ज्ञान की बाते हैं। हमारे, आपके, स्थूल शरीर के मस्तिष्क के बहुत आगे, आत्मा रूपी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म मस्तिष्क की बातें हैं। और उत्तम योगियों के द्वारा, आत्मा के सूक्ष्म दृष्टि से देखने, और उसे सूक्ष्म मस्तिष्क में अनुभव करने के बाद, स्थूल शरीर के स्थूल मस्तिष्क के यादगारी में लाने और स्मृति में कायम रखकर, प्रवचनों में, मुंह से व्यक्त करने, एवं कारे कागज पर कलम से लिपिबद्ध करने की बातें हैं। एक वाक्य में - अव्यक्त से व्यक्त करने की बातें हैं। इसी तरह के ज्ञान द्वारा, इसी तरह के सूक्ष्म अनुभवों के जरिए, चलिए आज हम जानें, कि तापरहित प्रकाश के महाशून्य में और उसके नीचे शून्य में, क्या-क्या है। कौन-कौन हैं।

— : —

सम्पूर्ण कुल का विवेक ज्ञान
प्रतिक्षण का पुत्र का ध्यान

....

Evolution of the Supreme Being
महाशून्य के महा शक्ति के रुपों का क्रमिक विकास
(१+२+३+४+५)

तापरहित प्रकाश में

(१) परः शिवः—सर्व शक्तिमान—परः ब्रह्म हैं। काल रहित है—विस्तृत है-रूप रहित है।-नाम रहित है। (Timeless) (Limitess) (Formless) (Nameless) इस स्थिति में स्वभाव से जब कम्पन पैदा होते हैं तो वे—

(२) स्पन्दशील - शब्द ब्रह्म - "वक" शब्द रुप में होते हैं (Vabrational-Brahm-in sound "Vak" form) इस शब्द के साथ ही प्रकाश निकल आते हैं। वही

(३) प्रकाश रूप - अर्धनारीश्वर - प्रथम एक प्रकाश रूपचित्त (आत्मा) है।

(Divine Light Form), Which is combination of Male and Female form, इस प्रकाश रुप में—बृहद ब्रह्माण्ड में विस्तृत रुप में स्थित [१] रंग [colour] [२] स्वाद [taste] [३] गंध [smell] [४] शब्द [sound] [५] स्पर्श [touch] पांच आसमानी परम सूक्ष्म तत्व, घनीभूत होते हैं। और सूक्ष्म रुप प्रथम एक आत्मा [One none-dual spirit] एक चित्त - अर्धनारीश्वर - का सृजन पूरा हो जाते हैं।

शून्य एवं महाशून्य तापरहित प्रकाश में हैं। और शून्य के बाद के महाशून्य में हीं, सृष्टि के सब कुछ है। इसी महाशून्य से ही सृष्टि के सब कुछ का अन्तिम अंत भी है।

लेकिन लोगों का यह धारणा गलत हैं कि सून्य में कुछ नहीं है। अगर इसे सही मान लिया जाय, कि शून्य में कुछ नहीं हैं तो महाशून्य में कुछ होने की बात की तो कल्पना ही नहीं की जा सकतीं है।

किन्तु आप इस बात को माने या नहीं माने, ये सब तो ज्ञान के आगे, कला ज्ञान और विज्ञान, के बहुत आगे, विवेक ज्ञान की बाते हैं। हमारे, आपके, स्थूल शरीर के मस्तिष्क के बहुत आगे, आत्मा रूपी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म मस्तिष्क की बातें हैं। और उत्तम योगियों के द्वारा, आत्मा के सूक्ष्म दृष्टि से देखने, और उसे सूक्ष्म मस्तिष्क में अनुभव करने के बाद, स्थूल शरीर के स्थूल मस्तिष्क के यादगारी में लाने और स्मृति में कायम रखकर, प्रवचनों में, मुंह से व्यक्त करने, एवं कारे कागज पर कलम से लिपिबद्ध करने की बातें हैं। एक वाक्य में - अव्यक्त से व्यक्त करने की बातें हैं। इसी तरह के ज्ञान द्वारा, इसी तरह के सूक्ष्म अनुभवों के जरिए, चलिए आज हम जानें, कि तापरहित प्रकाश के महाशून्य में और उसके नीचे शून्य में, क्या-क्या हैं। कौन-कौन हैं।

— : —

सम्पूर्ण कुल का विवेक ज्ञान

प्रतिक्षण का पुत्र का ध्यान

....

Evolution of the Supreme Being

महाशून्य के महा शक्ति के रुपों का क्रमिक विकास

(१+२+३+४+५)

ताप रहित प्रकाश में

(१) परः शिवः—सर्व शक्तिमान—परः ब्रह्म हैं। काल रहित है—विस्तृत है-रूप रहित है।-नाम रहित है। (Timeless) (Limitess) (Formless) (Nameless) इस स्थिति में स्वभाव से जब कम्पन पैदा होते हैं तो वे—

(२) स्पन्दशील - शब्द ब्रह्म - "वक" शब्द रुप में होते हैं (Vabrational-Brahm-in sound "Vak" form) इस शब्द के साथ ही प्रकाश निकल आते हैं। वही

(३) प्रकाश रूप - अर्धनारीश्वर - प्रथम एक प्रकाश रूपचित्त (आत्मा) है।

(Divine Light Form), Which is combination of Male and Female form, इस प्रकाश रुप में—बृहद ब्रह्माण्ड में विस्तृत रुप में स्थित [१] रंग [colour] [२] स्वाद [taste] [३] गंध [smell] [४] शब्द [sound] [५] स्पर्श [touch] पांच आसमानी परम सूक्ष्म तत्व, घनीभूत होते हैं। और सूक्ष्म रुप प्रथम एक आत्मा [One none-dual spirit] एक चित्त - अर्धनारीश्वर - का सृजन पूरा हो जाते हैं।

जिस एक चित्त (आत्मा) में, ईच्छा-ज्ञान-क्रिया—तीन लक्षण स्वतः निहित है। उस प्रथम एक आत्मा ने प्रथम एक लक्षण से ईच्छा किया कि मैं अधिक हों। द्वितीय लक्षण से उसे ज्ञान हुआ। उसके बाद तृतीय लक्षण से उसने कार्य किया। और उन्होंने अपने में से दो (१) शक्ति (ईश्वरी) (२) शक्तः (ईश्वर) बनाए।

(४) शून्य में प्रथम एक दैविक दम्पति -

कुलः — अकुलः
कालि — शिव
ईव — अदम-वही बने।

सृजन के उन प्रथम दैविक माता-+-पिता से उत्पन्न

∴

ब्रह्मा (उत्पति कर्त्ता) विष्णु (पालन कर्ता) महेश (लय कर्त्ता) बने। जो(१) जन्म शक्ति (२) जीवन शक्ति (३) मरणशक्ति है। इन तीन दैविक पुत्रों में. अर्धनारीश्वर में निहित, उन तीन शाश्वत दैविक शक्तियों (Powers of appearace, existence and dissolution) का अवतरण हुआ। और जिनसे सृष्टि का संचालन होता है। दैविक क्रमिक विकास में उन्हीं का अंश जीव-जन्मते हैं, जीते हैं और जाते हैं। यह प्रक्रिया काल (time) के अधीन होते रहते हैं। यही जगत (movement) है। जीव का जगत है। प्राकृति से परे-शून्य एवं महाशून्य का विवेक ज्ञान यहीं पूर्ण होता है।

यही दैविक कुल का विवेक ज्ञान है।

ताप युक्त प्रकाश में

अदृश्य तौर पर सीधे दैविक कुल से सम्बन्धित एवं प्रभावित - प्रकृति में-

[५] स्थूल रूप—पंच तत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) के पार्थिव शरीरों में छिपी, वही पूर्ण प्रकाश पूर्ण आत्मा का अंश प्रकाश [अंश आत्मा] दो स्थूल रुपों में छिपी है।

जो दृश्य—माँ आत्मा+पिता आत्मा हैं।
जो दृश्य— कुलः+अकुलः है।
प्राकृतिक— माता+पिता-हैं-
हरेक पुत्र के जन्म दातृ+पालनकर्त्ता सामने अपने हैं।

उनके द्वारा उत्पन्न, एक साधारण पुत्र हैं। इनके सृजन के सिलसिले में पुत्र के बाद के पुत्र, पौत्र, दर पुत्र एवं दर पौत्र हैं कई युगों का पुत्र-पौत्रों का यह सिलसिला, अतीत के माता पिताओं (पित्तर आत्माओं) के सम्बन्धों में चला आया है। और अनगित भविष्यों में भी चलता ही रहेगा।

एक असाधारण पुत्र हैं। अवतारी, पैगम्बर, ईश्वर-पुत्र हैं। जो साधारण पुत्र दम्पत्तियों के घर में ही जन्मते हैं। जिन्दगी में आरम्भ से ही उनके कुछ असाधारण व्यवहारों के कारण, साधारण पुत्र-पौत्रों के सिलसिले के पुत्र-पौत्रों के द्वारा उन्हे "भगवान" कहे जाते हैं। इनके सिलसिला नही है। कभी कभी जन्मते हैं। समाज में

इस सिलसिला का नवीनतम पुत्र अभी आप हैं जिनसे रामो बात करमा चाहता है। और अपने सिलसिला का ही पूजा करने का उपदेश करता है। फिर अपने को, अपने ही पित्तरों के द्वारा शून्य एवं महाशून्य के दैविक कुल से भी सदा सम्बद्ध करने का आग्रह करता है। क्योंकि आप पुनः सृजन की क्रिया में लिप्त हैं। अतः आपके लिये यही दैविक प्रक्रिया उपयुक्त है।

सूकर्मों का अभूतपूर्व छाप छोड़ जाते हैं। अतः इनके नाम से धर्म भी चलाए जाते हैं। जिसे भिन्न धर्म कहे जाते हैं। इन महान आत्माओं का सम्बन्ध सीधे शक्ति (कालि) से होता है। ये पुनः सृजनकी क्रिया में लिप्त होकर भी निर्लिप्त ही रह जाते हैं।

फल—पुत्र-पुत्री, के पवित्र रहन-सहन के, पवित्र मन से, शान्त एवं एकान्त वातावरण में, इस तरह के, सतत ध्यान से, सतत मनन से, अपने शरीर के अन्तः शक्ति के साथ, धाह्य शक्तियों का स्पर्श, अपने शरीर में मालूम किया जा सकता है। उससे अनायास ही यह भाव उत्पन्न हो सकता है, कि अपने शरीर में ईश्वर के अंश का, बाहर में स्थित ईश्वर के पूर्ण अंश के, साथ के सम्पर्क का ज्ञान. शारीरिक कम्पन्न एवं शारीरिक स्पन्दन में निहित है।

अतः अत्यंत पवित्रता में, अपने कुल के, शुद्ध खून के सिलसिला को, कायम रखते हुए, आप कुलयोगी ही बनें। और

साथ में असाधारण पुत्रों का आदर्श जिन्दगी भी बितावें। और इस तरह उनका भी आप भक्ति करें। लेकिन असली कुलाचारी तो खुद ही असाधारण पुत्र तुल्य, एवं शिव तुल्य ही बन जाते हैं।

हें-कोल आदिवासियों—मांगे पर्व में, सरहुल पर्व में, एवं परम्परागत अन्य त्योहारों में, अपने कुल से लेकर देवों के कुल तक का डिवेक ज्ञान हासिल कर, लोल परलोक के एक सम्पूर्ण कुल का आप पूजा करते हैं। एक सम्पूर्ण कुल को आप भोग अर्पण करते है। और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कोई भी छूट नहीं जाते हैं।

अतः आपका पूजा सम्पूर्ण है। आपका आस्था [faith] सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड का है। यह सही है। यह उचित है। क्योंकि विशाल वृहद ब्रह्माण्ड का हो तो आप एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड हैं। दूसरे पृथक धर्मावलम्बियों के जैसा आपका आस्था गैर सिलसिला के किसी एक अवतारी (Incarnation) पर सीमित नहीं है। उनके जन्म के एक ही तीर्थ स्थान में आपका आस्था अटकता नहीं है।

ईसी कारण तो मैं कहता हूँ कि आप उत्तम है। वरन एक उत्तम कुलयोगी है। कोल हैं।

मांगे पर्व में "शब्द ब्रह्म" के सम्बोधनार्थ, पौराणिक ही से भी पौराणिक, अत्यन्त आरम्भिक विधि के मुताबिक, अभी भी अत्यन्त पवित्र बाधकों के द्वारा, अत्यन्त पवित्र वातावरण में, शिव जी [मरंग बोंगा] को प्यारा, जंगली भैंस की सींग का आप सींग

ध्वनी करते हैं । सींग ध्वनि [साखोवा ओरोंग] के द्वारा सम्पूर्ण कुल को आह्वान करते हैं और तब उनका पूजा करते हुए भोग अर्पण करते हे । ऐसा किसी पृथक धर्म में कहीं नहीं कोई करते हैं ।

सींग ध्वनि महादेव को बहुंत प्रिय लगते हैं । न केवल सींग ध्वनि, वरन भैंस का बलि ही महादेव को प्रिय लगते हैं । पुराने जमाने में महादेव को, एवं कालि को भैंस की बलि ही दी जाती थी । कोलों की यही सर्वोच्च बलि है । कुल [शक्ति] अकुला [शिव] का सर्वोच्च सम्मान पूर्ण भोग अर्पण है ।

हाल के वर्षों तक नागा जाति के लोगों में, अपने घर में, आए अतिथि के लिये, मेहमान के लिये, सर्वोच्च सम्मान के रूप में भैंस की बलि देने की ही प्रथा थी । जो शिवजी के समान ही मेहमान को सर्वोच्च सम्मान देने का प्रतीक था ।

किन्तु आजकल भैंस (bison) बलि देने की परिपाटी [method] के स्थान पर भेड़, बकरा, मुर्गा, बतक एवं कबूतर का बलि देने की परिपाटी चल पड़ी है । यह शायद समय के फेर में गरीबी के कारण से है । लेकिन महादेव तो इतने में भी सन्तुट ही होते हैं । अपने किसी मांग की पूर्ति के लिये अक्सर लोग मानसिक करते हैं । मानसिक का आश्वासन पूरा करने में बिलम्ब होने की स्थिति में, यामहादेव का ही मांग को किसी के द्वारा पूरा करने में बिलम्ब होने की स्थिति में; लोग सादा पानी ही उनके नाम से अर्पण कर लोग मोहलए लेते है । और

इसे भी महादेव स्वीकार कर लेते हैं। और मान भी जाते हैं।

कोलों का महादेव के साथ का इतना निजी, इतना घनिष्ठ सम्पर्क का, उदाहरण शायद ही आपको कहीं देखने को मिलेगा। सुनने को मिलेगा। किसी गैर के बहकावे पर जिस किसी कोल ने परम्परा के बाहर, जन्म के सिलसिला के बाहर, किसी गैर अवतारी को अपना कर उसे ही पृथक धर्म में मानने का कोशिश किया है, उसके लिए उस गैर के साथ का घनिष्ठ सम्पर्क शायद ही होता होगा। वैसा होने का कहीं प्रमाण नहीं मिलता है।

— : —

कुल शब्द की उत्पति

कुलः अकुलस्य सम्बन्धः कौलः अभिधोयते ।

कुलः—दैविक मां है। कालि है। शक्ति है। पार्वती है। कुलेश्वरी हैं। उन्ही का रूप अपनी मां का रुप है।

अकुला—महादेव हैं। शिव हैं। दैविक पिता हैं। कुलेश्वर हैं। उन्हीं का रूप अपना पिता का रूप हैं।

निकट अतीत, सूदूर अतीत (distant past) के अपने ही जन्म के कुल के पूर्वजों के सिलसिले में, तथा अन्य सभी कुलों के सिलसिले में, इन्ही कुलेश्वरी - चुलेश्वर का संपूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण कुल के साथ भांनें पर्व में, आह्वान कर, आप कोल पूजा करते हैं, भोग अर्पण करते हैं।

इसे भी महादेव स्वीकार कर लेते हैं। और मान भी जाते हैं।

कोलों का महादेव के साथ का इतना निजी, इतना घनिष्ठ सम्पर्क का, उदाहरण शायद ही आपको कहीं देखने को मिलेगा। सुनने को मिलेगा। किसी गैर के बहकावे पर जिस किसी कोल ने परम्परा के बाहर, जन्म के सिलसिला के बाहर, किसी गैर अवतारी को अपना कर उसे ही पृथक धर्म में मानने का कोशिश किया है, उसके लिए उस गैर के साथ का घनिष्ठ सम्पर्क शायद ही होता होगा। वैसा होने का कहीं प्रमाण नहीं मिलता है।

— : —

कुल शब्द की उत्पति

कुलः अकुलस्य सम्बन्धः कौलः अभिधीयते ।

कुलः—दैविक मां है। कालि है। शक्ति है। पार्वती है। कुलेश्वरी हैं। उन्ही का रूप अपनी मां का रुप है।

अकुला—महादेव हैं। शिव हैं। दैविक पिता हैं। कुलेश्वर हैं। उन्हीं का रूप अपना पिता का रूप है।

निकट अतीत, सूदूर अतीत (distant past) के अपने ही जन्म के कुल के पूर्वजों के सिलसिले में, तथा अन्य सभी कुलों के सिलसिले में, इन्ही कुलेश्वरी - चुलेश्वर का संपूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण कुल के साथ भांनें पर्व में, आहवान कर, आप कोल पूजा करते हैं, भोग अर्पण करते हैं।

कुलेम्वरी - कुलेश्वर के दैविक कुल के साथ, अपने कुल के अपने पूर्वजों को शामिल कर, एक साथ हीं एक सम्पूर्ण कुल में पूजा करने के कारण ही आप कोल हैं ।

इनकी(दैविक मां - दैविक पिता) की पिता की पूजा के लिए आपके पास कोई चिन्ह, कोई संकेत (symbol) नहीं है । वैसा स्थूल संकेत "(पत्थर का वना हुआ शिव लिंग)" नहीं है, जैसा दूसरों, (गैर कोलों) के पास मन्दिरों में है ।

आप कोलों के पास तो. शिव लिंग का संकेत, मूल संकेत, ध्वनि संकेत, (sound symbol) है। यहां ध्यान देने की वात है कि सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि कर्त्ता ने, ध्वनि के द्वारा ही ब्रह्माण्ड का संचालन एवं नियत्रण किया था। उसी आदि परम्परा ध्वनि संकेत के आधार पर ही, शिव लिंग के सम्वोधनार्थ सींग ध्वनि के अलावे, अपने मुंह का शब्द मुंह ध्वनि से, मुंडारी में—

हें, रुजी चा, हे, रुजी चा, हे रुजी—

हे; लोए चा, हे, लोए चा, हे, लोए— उच्चारण करते हैं। मुख्य त्योहार के दिन वहुत सवेरे से, साखोवा (शंख) को निकट के चुवां में धोने के लिए ले जाते समय, और धोने के वाद पाहन, या दियुरी, (पुजारी) के घर के आंगन में ले आने तक, आप कोल वैसा शब्द ध्वनि करते हैं । यह कुलेश्वरी एवं कुलेश्वर के सम्वोधनार्थ संकेत ध्वनि है । अनपढ़ों के द्वारा, ऐसा शब्द संकेतका उच्चारण, करना असलील, असंगत (improper) नहीं है। जैसा कि पढ़े-लिखे आदिवासी लोग समझते हैं ।

आखिर सृजन, और पुनः सृजन का कारण वही लिंग हैं। ऐसे में वे शब्द सकेत या स्थूल संकेत कैसे गलत या असंगत हो सकते हैं ?

अब, आप ही बताइए, कि औरों के, याने गैर कोलों के स्थूल सकेत पत्थर के शिव लिंग के मुकाबले (comparison) में आपके आदि युगों के परम्परा में चला आ रहा है, शिव लिंग का शब्द संकेत, कितना उत्तम है ? कितना उचित है ? कितना पवित्र है ? कितना प्रभावशाली है ? और कितना प्रशंसनीय है ?

सृष्टि के आरम्भ में, सष्टि कर्त्ता ने; शब्दों के द्वारा ही ब्रह्माण्ड का नियंत्रण किया था। उन्ही शब्दों के प्रतिनिधित्व स्वरुप ही मां कालो के गले ५२ मुंडों का मुंड माला हैं। और जो देवनागरी लिपि (Letters) का प्रतिनिधित्व करता हैं। अतः वास्तव में मां कालो के गले का मुंड माला-देवनागरी लिपि का लिपि माला है।

उन्हीं सष्टि कर्त्ता, से सीखी गई, उन्हीं के शब्दों का, संकेत को उपयोग कर, आदि परम्परा के विधियों के मुताबिक आप सष्टि कर्त्ता के कुल का ही पूजा सम्मान करते हैं। यह क्या गौरव की बात नही है ?

....

अब बताइए—माता पिता के सिलसिला में, शुद्ध खून के शुद्ध सिलसिला में, उत्पन्न पुत्र को, भक्ति के पूजा एवं भोग अर्पण, कहां से आरम्भ करना चाहिए ?

मेरा सलाह अगर मानिए—तो निज कुल के पित्तरों से,

भक्ति के एवं कर्त्तव्य के, पूजा एवं भोग अर्पण, आरम्भ करते हुए, देव कुल के एवं सभी कुलों के, महापित्तर—कुल+अकुल—(शिव-शक्ति) कुलेश्वरी एवं कुलेश्वर में अन्त करना चाहिए। यही तर्क संगत एवं उपयुक्त विधि है। शीघ्र फलदायक विधि है।

प्रत्येक पुत्र पुत्री का ध्यान एवं मनन; पूर्वोक्त सम्पूर्ण कुल के नीचे से उपर की, याने वर्त्तमान निकट अतीत से सूदूर अतीत की ओर जाना चाहिए और उपर से नीचे की ओर याने सूदूर अतीत से निकट अतीत, वर्त्तमान की ओर आना चाहिए। और इसी तरह अपने ध्यान (meditation) में निज कुल से देव कुल तक की सम्पूर्ण कुल सीढ़ी में चढ़ते उतरते ही जीना चाहिए।

मुझे विश्वास है कि आपका संदेह दूर हो गया हैं, और अब निश्चित रूप से आप यह मानेंगे, कि ताप रहित प्रकाश के शून्य एवं महाशून्य में ही सब कुछ है। और ताप युक्त प्रकाश में स्थूल रुपों में दिखाई देने वाली, सब कुछ के होते हुए भी कुछ नहीं हैं।

क्योंकि, तभी तो महाशून्य के रूप रहित से, सब कुछ सब तत्व, घनीभूत होने के लिये, नीचे प्रकृति में, अवतरित होकर और सभी तत्वों के घनीभूत स्थूल रूप में कुछ समय तक ठहर कर, समय के अन्त में, हहां से (मृत्यु लोक से) विकीर्ण होकर शून्य एवं महाशून्य में फिर से विलीन हो जाते हैं। और तथा-कथित कुछ नहीं में फिर पहुंच चाते हैं। जहां से साधारण जन दिवंगत को खोज नहीं कर सकतेहैं। केवल योगी ही खोजलेते ह।

किन्तु कुल योगी तो केवल खोजते ही नहींवरन खोजकर सदा अपनी दृष्टि में, सदा अपने स्मृति में ही संजोये रखते हैं। उनको पूजा भोग अर्पण से उन्हें आकर्षित करते रहते हैं। उसे विलीन होने की दशा में आने पर भी विलीन होने नहीं देते हैं।

....

तो अब प्रकृति से परे, महाशून्य के रुप रहित से, शून्य के सूक्ष्म रूपों में, एव फिर प्राकृतिक तत्वों के सम्पर्क से स्थूल रूपों में प्रगट होने वाले रुप में परिवर्त्तन होने वाले, महाशक्ति मान के विभिन्न स्वरों के रूपों की अब हम विश्लेषण करें। और उनसे अपनी स्थिति का भी हम अन्दाजा करें।

अज्ञेय के रुप परिवर्त्तन

Evolution of Un-Knowable

— : —

ताप रहित प्रकाश में अव्यक्त सत्त रूप महा शून्य में

विस्तृत ब्रह्म :—परः शिवः, परः ब्रह्मः, परमेश्वर-योगी के स्थूल शरीर के मन एवं बुद्धि के तो परे हैं ही, पर योगी के सूक्ष्म आत्मिक शरीर के मन एवं बुद्धि के भी परे हैं। वे, अमनस, अशब्द, निष्फलः, निष्क्रिय, निःरुप हैं, विस्तृत हैं। ताप रहित उज्जवल प्रकाश से तापयुक्त धूमिल प्रकाश तक में व्याप्त हैं। पर स्वतः स्पन्दनशील है।

नोट-सत-Supreme Being

अल्प व्यक्त सत रुप महा शून्य में

शब्द ब्रह्म—स्पन्दन से उत्पन्न शब्द "वक" से वे शब्द "वक" रूप परमेश्वर हो जाते हैं। श्रेष्ठतम योगियों एवं तपस्वियों के द्वारा, स्पन्दन के शब्द "वक" को सुना जा सकता है। वैसे योगी "शब्द ब्रह्म" का नाम देते हैं। वही सूक्ष्म प्रकाश रूप में ईशते (ईशन्ति) हैं। सूक्ष्म रुप में इशते रहने के कारण वे "ईश्वर" है।

सूक्ष्म व्यक्त सत्त रुप शून्य में

ईश्वर—बृहत ब्रह्माण्ड के अदृश्य तत्वों (१) रंग (Colour) (२ स्वाद (Taste) (३) शब्द (Sound) (४) स्पर्श (touch) एवं (५) गंध (smell) के ताप रहित प्रकाश में घनीभूत होने पर परमचित्त रूप (Supreme spirit) परमात्मा होते हैं। वे सृष्टि कल्पना मंत्र "ॐ" हो जाते हैं। अगर वे वैसा नहीं होते तो सृष्टि के वस्तुओं में वे सभी गुण नहीं पाए जाते। प्रकाश रुप एक अकेला ईश्वर--अर्धनारीश्वर (one none-dual) हैं। अपने में शक्ति (कालि) एवं शक्तः (शिव) हैं। उन्हीं में निहित स्वतः उत्पन्न, इच्छा-ज्ञान-क्रिया, के द्वारा, अपने में से विभक्त दो रुप, प्रथम दैविक दम्पति (ईश्वरी+ईश्वर) हैं। कुलः अकुलः उन्ही दो रुपों का संयोग का परिणाम से देवों की उत्पति होने से वे देवों के कुलेश्वर हैं।

देवगण—दैविक शक्ति (Divine power) के अंश शक्ति हैं। ईश्वरी एवं ईश्वर के परम शुद्ध अंश हैं।

[१] ब्रह्मा-जन्म [appearance] [२] विष्णु - स्थिति [existence] और [३] महेश - लय [dissorotiou] शक्तियों [Powers [से युक्त हैं। केवल योगी के सूक्ष्म आत्मा के सूक्ष्म आंखों से दृष्टि गोचर होते हैं। उनके आभास को, उनके स्पर्श को योगी अपने स्थूल शरीर में भी अनुभव कर सकते हैं। इशन्ति के परिणाम का अंश स्वरुप नीचले स्तर में आत्माएं हैं। अंश आत्माएं हैं। ये भी योगी के द्वारा ही देखे जा सकते हैं।

सूर्य के ताप युक्त प्रकाश में प्रगट रुप

अंश आत्मा-प्रकृति के सम्पर्क में जब अवतरित होता है याने तापरहित प्रकाश से तापयुक्त प्रकाश में जब आता है, तो सूक्ष्म रूप धारण करता है। और नारी के रक्त बिन्दु के मिलन से उत्पन्न मिश्रित बिन्दु में बीज स्वरूप अवतरित होते हैं। और समय के गुजरते नारी के कोख में, प्राकृतिक पंच तत्वों में अपने को लपेटते हुए, उसे विकास करते हुए, स्थूल रूप, शरीर रूप, धारण करते हैं। और इस तरह प्राकृतिक पंच तत्वों से परे, केवल एक तत्व-आत्मा-पुत्र-आत्मा-के रूप में नर शरीर आत्मा और नारी शरीर आत्मा के मिलन के फलस्वरूप मिश्रित बिन्दु का मंच यहां तैयार होने पर वही सूक्ष्म रूप स्थूल शरीर (gross body) में प्रगट होते हैं।

प्रगट रुप—यहीं, अज्ञेय, अदृश्य, अशब्द, निःरुप, के परिवर्तन का आखिरी परिणाम है। जो माता-पिता एवं पुत्र-पुत्री के सम्बन्ध में अंत होता है।

—: प्रगट रुपों का अन्तर :—

अंश आत्माओं के कई तरह के स्थूल रूपों में सबसे उत्तम रूप आदमी रूप ही है। क्योंकि इस रूप में मन एवं बुद्धि के अतिरिक्त में विवेक है। पर इन आदमी रूपों का भी अन्तर है जो निम्न कारणों से निम्न प्रका · है।

भगवान—प्राकृतिक शरीर के आदमी रूप में जिनको शक्ति [कुलः] एवं शक्तः [अकुलः] की कृपा सीधे स्वतः प्राप्त है। वे शुद्ध सत्वगुणी प्रधान हैं। वे औसत आदमी रूपों में विलक्षण है। उनके संसारिक व्यवहार उत्तम होते हैं। दूसरे शब्दों में परमात्मा का शुद्ध आत्मा जिस आदमी रूप में है, उनकी प्रतिभा अपने ढंग की होती है। वैसे उस आदमी रूप को उसके नाम के साथ-हम, भगवान, अवतारी, पैगम्बर एवं ईश्वर-पुत्र कहते हैं।

प्रभु—(परः+भू) जो बार-बार होने (जन्मने) से परे हैं। वे भगवान ही हैं।

सिद्ध पुरुष—आदमी रुप में, अत्यन्त पवित्रता में, तवस्या के बल पर, जिन्होंने ईश्वर की कृपा को प्राप्त कर ली है। जो जीवित अवस्था में ही अवनी आत्मा को स्थूल शरीर से अलग कर, देवों से सम्पर्क करा सकते हों। और इश्वर तत्वों में विलय कर सकते हों। और फिर पूर्ववत आत्मा शरीर मे वापस आ सकते हों।

सिद्ध पुरुष में ऋषि—वे हैं, जो स्थूल शरीर के आंखों से

स्वर्गलोक, देवलोक, को देख सकते हों। उनसे हमेशा। सम्पर्क कर सकते हैं।

मुन्नी–वे हैं, जो मनन के द्वारा देवोंके स्पर्श को अपने शरीर में अनुभव कर सकते हों। मनन में लीन होनेके कारणही मुनि हैं।

मनुष्य—मेहनत का जिन्दगी निभाते हुए जिनका मन ईश्वर के शक्तियों के प्रति जागृत हैं। सृष्टि कल्पना के प्रति चैतन्य (concious) हैं। याने जिनमें विवेक ज्ञान जागृत हैं। जिसके फलस्वरुप जिनके दो मन, दो बुद्धि जागृत हैं। एक मन एक बुद्धि तापरहित प्रकाश में ईश्वरीय कुल से हमेशा सम्बन्धित हैं। और दूसरे मन से तापयुक्त प्रकाश में अत्यन्त पवित्रता में दाम्पत्य जिन्दगी निभाते हुए कुल (शक्ति) अकुल (शिव), इच्छा ज्ञान एवं क्रिया से प्रभावित सृष्टि कल्पना का अनुशरण करते हैं। अतः ये कुल+अकुल के सम्बन्ध का कुल भोगी है। और इसी चेतना के साथ संसारिक कर्म करते है।

साधु-सन्यासी—दैविक कुल के दैविक शक्तियों के निकट पहुंचने, पह्चकर मन बचन वो कर्म से सदा निकट में बने रहने के प्रयास ने, सहनशीलता के धनी, शीलवान और काम-क्रोध-लोभ वो मोह के त्यागी, महान आत्माएं हैं। इसी तरह के **महात्मा**—अन्य त्यागी लोग, साधु-सन्यासी के वेश में नही होने पर भी, उनके महान विचारों, एवं व्यवहारों के कारण महात्मा कहलाते है। अनायास ही लोग उसे महात्मा कह देते हैं। उनके विचार अक्सर "वसुधैव कुटुम्बकय" से प्रेरित रहते हैं। ऐसे ही विचार वाले, साधु, सन्यासी एवं महात्माएं हैं।

आदमी—कड़ी मेहनत के द्वारा, अपने पर निर्भर होकर, अपनी जीविका निर्वाह करने वाले आदमी हैं। दूसरे आदमी को अपने जैसा आदमी समझकर, उनके हक को छीने वगैर अपने हम में संतुष्ट रहता है। और अपना ही दाम्पत्य जिन्दगी से संतुष्ट होकर, पवित्रता में, अपना ही श्रोत माता-पिता का, सेवा करता हो, पूजा करता हो, वह आदमी है। पवित्र वातावरण के पवित्र कर्मी, धर्मी, आदमी है।

पशु तुल्य आदमी—जिस तरीके से भी हो, धन बटोरना हो। उचित अनुचित का ख्याल किए विना, छीन झपट कर, दिन में कमाता खाता हो अपने दाम्पत्य जिन्दगी के परिधि के बाहर अन्य नारियों से व्याभिचार करता हो; और रात में खर्राटे में सो जाता हो। किसी बुरे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक गुट का बल कायम करने में शामिल होता हो, और इसी गुट (जात-कौम) के रीति रिवाजों के अन्दर कुछ सामाजिक आचरण भी करता हो। जो किसी दूसरे आदमी को अपने जैसा नहीं समझता हो। अपना ही श्रोत माता-पिता का परवाह नहीं कर निरादर करता हो। वैसे व्यक्ति आदमी रूप में पशु है।

शैतान—आदमी रूप में, पशु तुल्य स्तर से भी निम्न स्तर का काम करने वाला, किसी के मजदूरी का फायदा उठाने वाला, विना कारण किसी के सुख शान्ति एवं सुरक्षा का बाधक बनने वाला आदमी रूप में शैतान है।

— : —

आदमी—कड़ी मेहनत के द्वारा, अपने पर निर्भर होकर, अपनी जीविका निर्वाह करने वाले आदमी हैं। दूसरे आदमी को अपने जैसा आदमी समझकर, उनके हक को छीने बगैर अपने हम में संतुष्ट रहता है। और अपना ही दाम्पत्य जिन्दगी से संतुष्ट होकर, पवित्रता में, अपना ही श्रोत माता-पिता का, सेवा करता हो, पूजा करता हो, वह आदमी है। पवित्र वातावरण के पवित्र कर्मी, धर्मी, आदमी है।

पशु तुल्य आदमी—जिस तरीके से भी हो, धन बटोरना हो। उचित अनुचित का ख्याल किए विना, छीन झपट कर, दिन में कमाता खाता हो. अपने दाम्पत्य जिन्दगी के परिधि के बाहर अन्य नारियों से व्याभिचार करता हो; और रात में खर्राटे में सो जाता हो। किसी बुरे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक गुट का बल कायम करने में शामिल होता हो, और इसी गुट (जात-कौम) के रीति रिवाजों के अन्दर कुछ सामाजिक आचरण भी करता हो। जो किसी दूसरे आदमी को अपने जैसा नहीं समझता हो। अपना ही श्रोत माता-पिता का परवाह नहीं कर निरादर करता हो। वैसे व्यक्ति आदमी रूप में पशु है।

शैतान—आदमी रूप में, पशु तुल्य स्तर से भी निम्न स्तर का काम करने वाला, किसी के मजदूरी का फायदा उठाने वाला, विना कारण किसी के सुख शान्ति एवं सुरक्षा का बाधक बनने वाला आदमी रूप में शैतान है।

— : —

इस मापदण्ड के आधार पर, अब हम अपने को जांचे कि हम कहां पर मेल खाते हैं ।

अगर हम बहुत नीचले स्तर में ही मेल खाते हो तो, इससे नाराज होने की आवश्यकता नहीं है। मन को छोटा करने की आवरयकता नहीं है। अफसोस करने की आवश्यकता है। अगर अभी हम गन्दे कार्यों के गन्दे कीचड़ में भी फंसे हों, और इस तरह दूषित भावनाओं से अपने आत्मा को गन्दा भी कर लिए हों तो; यही कीचड़, उपर उठने का, स्वच्छ से स्वच्छ स्तरों में, पहुंचने का और आध्यात्मिकता के ऊंचाईयों में पहुंचने का हमारा आधार हो सकता है। वशर्ते कि इसके लिए हम अपने मन के भावनाओं के अन्दर से पशु भाव को त्यागें। दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ त्यागें और बहादुरी के साथ वीर भाव में पहुंचने की कोशिश करें। अगर हम वीर भाव के धनी वीर बन जाते है तो वीर भाव के आगे दिव्य भाव में पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि वीर भाव ही दिव्य भाव में पहुंचने की मजबूत सहारा है। मजबूत बल्ला (beam) है ।

—: प्रमुख रास्ते :—

महाशक्तिमान को अनुभव करने के दो ही प्रमुख रास्ते है ।

पहली	दूसरी
सृष्टि कर्ता के सृजन की क्रिया से अपने को अलग रखते हुए एकाकी, जिन्दगीका रास्ता है।	सृष्टिकर्ता के सृजन की क्रिया में, अपने को शामिल करते हुए दुकेला जिन्दगीका रास्ताहैं

इसमें आजीवन बाल ब्रह्मचर्य के जिन्दगी को निभाते हुए संत होना है। कुलाचारी संत होना है। जैसे शुद्ध आए, जिस रूप में आए। बैसे शुद्ध उसी रुप में वापस लौट गए।

सत्व से आए तो जिन्दगी भर सत्व गुणों रहकर, पुनः सत्व में ही प्रबेश पाने का कठोर प्रयास सन्यास का रास्ता है।

बचपन से, किशोरावस्था से, या गृहवस्थाश्रम से आरम्भ किया हुआ केवल महाशक्तिमान में लीन, त्यागी का सन्यासी का पवित्र जिन्दगी का रास्ता है। इसे महाशक्तिमान में स्वर्पण कहा जाय तो अच्छा है। यह केवल अपमे फायदे के लिए है।

इसमें दाम्पत्य जिन्दगी की जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपने जन्म के श्रोत निज माता पिता के प्रति कर्त्तव्य को निभाते हुए, सबके श्रोत परमपिता परमेश्वर के प्रति कर्त्तव्य को निभाना होता है।

पति पत्नीके अत्यन्त पवित्र रहन-सहन एवं उनके निवास के घर के अत्यन्त पवित्र वातावरण- में पवित्र रसोई का सम्पूर्ण कुल के कुल आत्माओं को भोग अर्पण करना होता है। उनके भोग अर्पण से बचा हुआ भोजन हीं सेवन करना होताहै।

पति-तत्नीं के भोग करते हुए ही कुल योग करना होता है। इसे परिवारिक कुलार्पण कहा जाए तो अच्छा है।

यह पुस्त दर पुस्त के पारिवारिक फायदे के लिए है।

इन दो रास्तों में से अपने लिए जो उपयुक्त मालुम पड़े उसी का ही अनुशरण करना चाहिए। मेरे समझ से तो कुलाचार ही उत्तम है।

भिन्न धर्मावलम्बियों ने, इन दो रास्तों के अलावे, और भी बहुत से मन गढ़न्त रास्ते बना लिए हैं। उनमें पारिवारिक जिन्दगी निभाते हुए किसी पैगम्बर या किसी अवतारी या किसी तपस्वी, या किसी गुरू के शरण में रहना होता है। और उनका ही उपासना करना होता है। ये रास्ते पैगम्बर, अवतारी, तपस्वी एवं गुरू के स्तर में ही अटकते हैं। इस कारण ये महाशक्तिमान तक अपने ध्यान को पहुंचाने एवं उनका ही स्पर्श को अनुभव करने के रास्ते नही है। वरन ये अंधे की लाठी मारने के जैसे रास्ते है।

कई धर्मों में, साधु साध्वी की, अकेलापन की कठोर जिन्दगी निभाते हुए ही ईश्वर को अनुभव करने का रास्ता बताया गया है। और लोगों को दाम्पत्य जिन्दगी वालों को, केवल साधुओं, एवं साध्वीयों की सेवा करने का उपदेश दिया गया है। और ऐसा बताकर, अबतक लोगों को गुमराह किया जाता रहा है। क्योंकि दम्पतियों को स्वयं ही अपने प्रयास से ईश्वर को अनुभव करने से वंचित किया जाता रहा है।

लेकिन यह केवल एक अकेले के जिन्दगी के लिए ही उपयोगी हैं। एक साथ पति-पत्नी के लिये एवं एक साथ उनके परिवार के लिये ये रास्ते उपयोगी नहीं हैं। संसारिक जिन्दगी के लिये तो कुलाचार ही उपयोगी हैं। क्योंकि अवने कुल सूत्र में महाशक्तिमान के सम्पूर्ण कुल को ही पिरोने का प्रावधान है।

— : —

—: त री के :—

आध्यात्मिक जगत के उपलब्धियों के वैसा ही स्तरें हैं। जैसाकि शैक्षणिक संस्थाओं के योग्यता प्राप्त करने के स्तरें हैं। उन स्तरों को प्राप्त करने के लिए तरीकें हैं। वे तरीके भिन्न-भिन्न धर्मों में करीब-करीब निम्न प्रकार है ।

तरीके	स्तरें
१. पूजा, प्रार्थना, और पढ़ना सामूहिक हो या व्यक्तिगत हो।	निम्न प्राथमिक है। (Lower Primary)
२. भजन वो कीर्तन और तहरीर सामूहिक हो या व्यक्तिगत हो।	उच्च प्राथमिक है। Upper Primary
३. जप-अवतारियों का नाम जप, या मंत्र जप व्यक्तिगत है।	माध्यमिक है Mihdle
४. तप एवं ध्यान-कोठरी के अन्दर निर्जन स्थान में एकान्त, एकाग्र चित्त का व्यक्तिगत साधना है।	उच्च माध्यमिक Matric and I. A.
५. ध्यान एवं योग-वाह्य शक्ति का आन्तरिक शक्ति के साथ मिलान एव स्पर्श का शरीर में अनुभव।	स्नाकत्तोतर B. A.
६. समाधि-एकान्त में रात या दिन के सन्नाटा में, योगी के शरीर से आत्मा का शरीर त्याग और वृहद ब्रह्माण्ड में विचरण और शरीर में आत्मा का पुनः प्रवेश।	प्रवीण M. A.

७. कुलाचारी - परम पवित्रता में सम्पूर्ण कुल के ज्ञाता एवं संपूर्ण कुल अर्पण के पुजारी होते हैं ।	प्रवीणतम Ph. D.

–: पु जा :–

पूंजी-पूज्य-पूजा—इस प्रकार ही इस शब्द के विकास होने की सम्भावना मालूम पड़ती है। अपने से बड़े ही पज्य होते हैं। और पूजा पूज्य की ही होती है। चाहे वे अपने माता-पिता हों, देवी हों, देवता हों।

देवों से ब्रह्मा विष्णु एवं महेश के पूर्वज तो परः शिव (Supreme Shiva) ही थे। अतः वही उनके पूज्य हुए। उन्होंने उन्ही की पूजा अराधना की है। इसके अलावे तो अन्य सम्भावना नही है ।

अदम एवं ईव के सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम पैदा होने की बात कही जाती है। और सीधे परमेश्वर से ही प्रथम पैदा होने की बात कही जाती है। ऐसी हालत में अदम एवं ईव के पूज्य ईश्वर ही हुए। अगर उन्होंने भी पूजा अराधना की होगी, तो अपने पिता, अपने जन्म के श्रोत की ही पूजा अराधना की है। इसके सिवाय तो अन्य सम्भावना नहीं है ।

क्रीस्त ने ईश्वर को बराबर पिता-पिता कहा था। और इस तरह उन्होंने अपने मन मे जन्म के परम श्रोत, पिता ईश्वर की ही पूजा की थी।

—: त री के :—

आध्यात्मिक जगत के उपलब्धियों के वैसा ही स्तरें हैं। जैसाकि शैक्षणिक संस्थाओं के योग्यता प्राप्त करने के स्तरें हैं। उन स्तरों को प्राप्त करने के लिए तरीकें हैं। वे तरीके भिन्न-भिन्न धर्मों में करीब-करीब निम्न प्रकार है ।

तरीके	स्तरें
१. पूजा, प्रार्थना, और पढ़ना सामूहिक हो या व्यक्तिगत हो।	निम्न प्राथमिक है। (Lower Primary)
२. भजन वो कीर्तन और तहरीर सामूहिक हो या व्यक्तिगत हो।	उच्च प्राथमिक है। Upper Primary
३. जप-अवतारियों का नाम जप, या मंत्र जप व्यक्तिगत हैं।	माध्यमिक है Mihdle
४. तप एवं ध्यान-कोठरी के अन्दर निर्जन स्थान में एकान्त, एकाग्र चित्त का व्यक्तिगत साधना है।	उच्च माध्यमिक Matric and I. A.
५. ध्यान एवं योग-वाह्य शक्ति का आन्तरिक शक्ति के साथ मिलान एव स्पर्श का शरीर में अनुभव।	स्नाकत्तोतर B. A.
६. समाधि-एकान्त में रात या दिन के सन्नाटा में, योगी के शरीर से आत्मा का शरीर त्याग और वृहद ब्रह्माण्ड में विचरण और शरीर में आत्मा का पुनः प्रवेश।	प्रवीण M. A.

७. कुलाचारी - परम पवित्रता में सम्पूर्ण कुल के ज्ञाता एवं संपूर्ण कुल अर्पण के पुजारी होते हैं।	प्रवीणतम Ph. D.

—: पु जा :—

पूंजी-पूज्य-पूजा—इस प्रकार ही इस शब्द के विकास होने की सम्भावना मालूम पड़ती है। अपने से बड़े ही पज्य होते हैं। और पूजा पूज्य की ही होती है। चाहे वे अपने माता-पिता हों, देवी हों, देवता हों।

देवों से ब्रह्मा विष्णु एवं महेश के पूर्वज तो परः शिव (Supreme Shiva) ही थें। अतः वही उनके पूज्य हुए। उन्होंने उन्ही की पूजा अराधना की है। इसके अलावे तो अन्य सम्भावना नही है ।

अदम एवं ईव के सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम पैदा होने की बात कही जाती है। और सीधे परमेश्वर से ही प्रथम पैदा होने की बात कही जाती है। ऐसी हालत में अदम एवं ईव के पूज्य ईश्वर ही हुए। अगर उन्होंने भी पूजा अराधना की होगी, तो अपने पिता, अपने जन्म के श्रोत की ही पूजा अराधना की है। इसके सिवाय तो अन्य सम्भावना नहीं है ।

क्रीस्त ने ईश्वर को बराबर पिता-पिता कहा था। और इस तरह उन्होंने अपने मन मे जन्म के परम श्रोत, पिता ईश्वर की ही पूजा की थी ।

परिभाषा—इससे बात साफ जाहीर होने लगती है, कि पूजा का मतलब अपने मन एवं कर्म से, अपने पूज्य का हार्दिक सम्मान एवं सेवा है। इससे तच्चतम परिभाषा अन्य प्रतीत नहीं होती है।

सम्मान—जब हमें पूज्य को सम्मान देना ही है, तो हम अपनी जिन्दगी में कोई भी कर्म करें, आरम्भ से अन्त तक अपने पूज्य, जन्म के श्रोत का स्मरण करें। इससे अपने जन्म के श्रोत आत्मिक माता-पिता एवं परमपिता का सम्मान होता है और पूज्य की याने ईश्वर की ही मदद, उस कर्म को सफलता के साथ पुरा करने में, मिल सकती है।

सेवा—जब हम अपना सेवा करें तो सर्वप्रथम पूज्य की ही सेवा करें। अपने जिन्दगी के खान-पान में, जब कोई खास पदार्थ का सेवन करें, या कोई पेय पदार्थ का पान करें, तो सर्व-प्रथम पूज्य (माता-पिता और उनके सिलसिले में परमपिता) को ही अर्पित कर सेबन करें। पवित्र रसोई का थोड़ा अंश, ताजे पत्ते पर या तश्तरी में, जन्म के श्रोत पुज्य को, प्रथम अर्प्ति करें। तब बचा हुआ अपने उपभोग करें।

तभी तो सम्मानजनक सेवा कहा जा सकता है। या सम्मानजनक सेवा हो सकता है। सम्मान एवं सेवा अगर एक साथ नहीं हो तो पूज्य का पूजा नहीं हो। सम्मान मन में है और सेवा कर्म में है। इसी कारण अपने जन्म के पूज्य श्रोतों का तो क्या, किसी अन्य पुज्य जैसे अवतारी पूज्य (राम, कृष्ण, महा-

अमद एवं कीर्त एवं तपस्वियों) को भी सम्मान के साथ ही सेवा भी होना चाहिये।

क्योंकि सभी पूज्य सम्मान के साथ सेवा से ही खुश होते हैं। मात्र स्तुति, प्रार्थना, पढ़ना एवं जप तप से नहीं। सम्मान और सेवा से पूज्यों के खुश होने पर कठिनाईयों में उनकी अदृश्य मदद मिल सकती है।

प्रकार—पूजा दो प्रकार का है। एक प्रकार में मूर्ति पूजा है और दूसरा प्रकार में विना मूर्ति का पूजा है। मूर्ति पूजा—सार्वजनिक स्थान में सामूहिक तौर से किया जाये या अपने घर में व्यक्ति-गत तौर से किया जाये, मुख्यतः वाह्य (external) पूजा है। ईष्ट देवी एवं ईष्ट देवता के आकार को मूर्ति रुप में सामने रख कर उनकी आत्मा (सूक्ष्म रुप) को उस आकार में आह्वान कर सम्मान एवं सेवा के साथ पूजा किया जाता है।

विना मूर्ति का पूजा आन्तरिक या अन्तः (internal) पूजा है। मूर्ति पूजारक के हृदय में, मन में जब ईष्ट देवी या ईष्ट देवता का स्वरुप समा जाता है, तब उस अभ्यस्त पुजारी को, मूर्ति का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वे जब भी चाहें चलते फिरते, या जिस स्थान में भी चाहें, पवित्र हालत में अपने आसन पर बैठ कर, ईष्ट देवी और ईष्ट देव का अपने मन से अपने हृदय में; आह्वान (invitation, summon) कर सकते हैं। और आह्वान करने के बाद, हृदय के तल पर के पिंड पर बैठाते हैं। ईष्ट देवी, ईष्ट देव के चरणों को, मस्तिष्क

परिभाषा—इससे बात साफ जाहीर होने लगती है, कि पूजा का मतलब अपने मन एवं कर्म से, अपने पूज्य का हार्दिक सम्मान एवं सेवा है। इससे तच्चतम परिभाषा अन्य प्रतीत नहीं होतीं है ।

सम्मान—जब हमें पूज्य को सम्मान देना ही है, तो हम अपनी जिन्नगी में कोई भी कर्म करें, आरम्भ से अन्त तक अपने पूज्य, जन्म के श्रोत का स्मरण करें। इससे अपने जन्म के श्रोत आत्मिक माता-पिता एवं परमपिता का सम्मान होता है और पूज्य की याने ईश्वर की ही मदद, उस कर्म को सफलता के साथ पुरा करने में, मिल सकती है ।

सेवा—जब हम अपना सेवा करें तो सर्वप्रथम पूज्य की ही सेवा करें। अपने जिन्दगी के खान-पान में, जब कोई खास पदार्थ का सेवन करें, या कोई पेय पदार्थ का पान करें, तो सर्व-प्रथम पूज्य (माता-पिता और उनके सिलसिले में परमपिता) को ही अर्पित कर सेवन करें। पवित्र रसोई का थोड़ा अंश, ताजे पत्ते पर या तश्तरी में, जन्म के श्रोत पुज्य को, प्रथम अर्प्ति करें। तब बचा हुआ अपने उपभोग करें ।

तभी तो सम्मानजनक सेवा कहा जा सकता है। या सम्मानजनक सेवा हो सकता है । सम्मान एवं सेवा अगर एक साथ नहीं हो तो पूज्य का पूजा नहीं हो। सम्मान मन में है और सेवा कर्म में है । इसी कारण अपने जन्म के पूज्य श्रोतों का तो क्यो, किसी अन्य पुज्य जैसे अवतारी पूज्य (राम, कृष्ण, महा-

अमद एवं क्रीस्त एवं तपस्वियों) को भी सम्मान के साथ ही सेवा भी होना चाहिये।

क्योंकि सभी पूज्य सम्मान के साथ सेवा से ही खुश होते हैं। मात्र स्तुति, प्रार्थना, पढ़ना एवं जप तप से नहीं। सम्मान और सेवा से पूज्यों के खुश होने पर कठिनाईयों में उनकी अदृश्य मदद मिल सकती है।

प्रकार—पूजा दो प्रकार का है। एक प्रकार में मूर्ति पूजा है और दूसरा प्रकार में विना मूर्ति का पूजा है। मूर्ति पूजा—सार्वजनिक स्थान में सामूहिक तौर से किया जाये या अपने घर में व्यक्तिगत तौर से किया जाये, मुख्यतः वाह्य (external) पूजा है। ईष्ट देवी एवं ईष्ट देवता के आकार को मूर्ति रुप में सामने रख कर उनकी आत्मा (सूक्ष्म रुप) को उस आकार में आह्वान कर सम्मान एवं सेवा के साथ पूजा किया जाता है।

विना मूर्ति का पूजा आन्तरिक या अन्तः (internal) पूजा है। मूर्ति पूजारक के हृदय में, मन में जब ईष्ट देवी या ईष्ट देवता का स्वरुप समा जाता है, तब उस अभ्यस्त पुजारी को, मूर्ति का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वे जब भी चाहें चलते फिरते, या जिस स्थान में भी चाहें, पवित्र हालत में अपने आसन पर बैठ कर, ईष्ट देवी और ईष्ट देव का अपने मन से अपने हृदय में; आह्वान (invitation, summon) कर सकते हैं। और आह्वान करने के बाद, हृदय के तल पर के पिंड पर बैठाते हैं। ईष्ट देवी, ईष्ट देव के चरणों को, मस्तिष्क

के उपरी सतह के चन्द्रलोक से अमृत रस को उतार कर, धोते हैं। वही अन्तः पुजारी के लिये ईष्ट देवी एवं ईष्ट देव का चरणामृत हो जाता है। इसी तरह से हृदय में ही वाह्य पूजा के समूची प्रक्रियाओं से विधियों से, चिन्तन के सहारे आन्तरिक पूजा को सम्पन्न किया जाता है। और इष्ट देवी या इष्ट देव की इसी तरह से हर हमेशा मनन करते हैं। इससे इष्ट देवी एव इष्ट देव हर हमेशा पूजारी के अपने सम्पर्क में रहते हैं। और पूजारी को हर हमेशा दैविक सूरक्षा मिलते रहने की सम्भावना बनी रहती है।

वाह्य पूजा को, अक्सर जोरों की आवाज के साथ और कभी तो ध्वनि विस्तारक यन्त्र (Loud-speaker) को सहायता से सम्पन्न किया जाता है। जिससे कि पूजा में शामिल लोग भी पूजा की विधियों को देख सकते हैं, सुन सकते हैं। किन्तु अन्तः पूजा बिलकुल मौन पूजा है। केवल पूजारी ही अनुभव कर सकते हैं। जैसा—मौनी बाबागण करते हैं।

इसके अलावे अन्य प्रकार की पूजा नहीं है। अगर है तो संसार के लोगों के लिये प्रगट करने की कृपा किया जाए।

मेरे ज्ञान में और अन्य प्रकार की पूजा नृत्य गान के द्वारा किया जाता है। नृत्य एवं गान (ताण्डव नृत्य-तण्डय सुन) अपनी खुशी के साथ देवी देवताओं को खुश करने के लिये ही किया जाता है। सफल पूजा के साथ नृत्य एवं गान भी शामिल रहे तो ऐसा समझना चाहिये कि सोना में सुगन्ध हो जाता है।

पर यह ईश्वर भाव में डुबे हुये भक्त एव भक्तियों, योगी एवं योगिनियों के लिये ही उपयुक्त होता है।

कोल आदिवासियों में, हरेक परम्परागत, त्योहार के साथ पूजा और पूजा के साथ पूजागीत एवं पूजा नृत्य का अनूठा सम्मिश्रण है। अन्य गैर कोलों को ऐसा सम्मिश्रण अच्छा नहीं भी मालुम पड़े तो कोई हर्ज नहीं है। यह तो कोलों की खास अपनी संस्कृति है। किसी से नकल नहीं की गई है। किसी को अच्छा लगने या नहीं लगने से मतलब ही क्या है। शक्ति (power) के उपासक कोलों को यह अपना परम्परा कभी भी किसी भी हालत में नहीं भूलना चाहिये। नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि कोलों की संस्कृति उत्तम है। हाँ अब बदलती समय के मुताबिक, इसमें कुछ सुधार करना चाहिये। किशोरों को एक अलग कतार में और किशोरियों को अलग एक कतार में नाचना चाहिये।

पाहन या दियुरी के द्वारा किया जाने वाला वाह्य पूजा, सामूहिक परिवारों के सामूहिक कुलों के सदभावना के लिये बहुत उपयोगी है। क्योंकि वे सम्पूर्ण कुल के पूजारी हैं। और कोलों के एक गांव के तरफ से, वे पूजा करते हैं। परन्तु इसके बाद ही परिवार के कर्त्ता को, अपने कुल के लिये दैविक कुल के साथ ही, व्यक्तिगत घरेलू पूजा करना चाहिये। विशेष फल के इच्छुक, परिवार के कर्त्ता को अन्तःपूजा का भी सतत सहारा लेना चाहिये।

किन्तु, अगर आप अपने को, जिन्दगी भर, पूजा, प्रार्थना एवं पढ़ाई में ही सीमित करते हैं तो भूल करते हैं। इसका मतलब तो यही हुआ कि आप प्राथमिक (primary) श्रेणी में ही रह जाना चाहते हैं। किसी के लिये भी किसी एक स्तर पर टिके रहना अच्छा नहीं है। ऐसे में वे, कई उन भक्तों से पीछे छूट जाएँगे जो, अपने जिन्दगी में उत्तरोत्तर आत्म विकास के लिये एवं दैविक उपलब्धियों के लिये निम्न स्तर के बाद उपर के दूसरे उच्च स्तर पर पहुंचने के लिये साधना करते हैं। आप भी साधना का अभ्यास कीजिये। सतत अभ्यास कीजिये। पति पत्नी दोनों ही अभ्यास कीजिये। और आध्यात्मिक जगत के उपलब्धियों मे महाशक्तिमान को ही, अपने शरीर मे अनुभव कर सकने लायक अभ्यास कीजिये। अकेले दुकेले सम्भव नहीं हो सके तो योग्य गुरु की भी मदद लोजिये। योग के साधन के लिये तो आपको एक योग्य गुरु का शरण लेना ही अच्छा है।

महत्वपूर्ण--आपको हमेशा मन मे यह भावना रखना चाहिये कि " मैं ईश्वर का अंश हूं। अपने माता पिता के द्वारा धरती पर आया हूँ। अतः माता पिता एवं ईश्वर ही मेरे पूज्य हैं।"

— oo —

जिनकी कृपा से जीवित रह कर जिनको हम पूजा करते हैं. मनन करते हैं या सकुशल बहुत दिनों तक जीवित रहने के लिये जिनका हम पूजा करते हैं, मनन करते है, उन शक्तियों (powers) का हम ज्ञान हासिल करें।

अदृश्य शक्तियां

ध्यान योग मे प्राप्त ज्ञान के आधार पर और फिर प्रकट रूपों के अन्दर के शक्तियों के विश्लेषण के आधार पर वृहद ब्रह्माण्ड में (पूज्यनीय एवं मानमीय) मुख्यतः तीन शक्तियां प्रबल हैं।

परम शक्तिमान (Supreme Power)

इस शक्ति का कोई नाम नहीं है, रूप नहीं है फिर भी भक्त लोग अपने को इस शक्ति से सम्बद्ध करने के लिए इस शक्ति का नाम सत्य, ईश्वर, अल्हा, God कहते हैं।

शक्तिमान (Super Powres)

परम शक्तिमान के शुद्ध अंश से शक्तिमान, अवतारियों, पैगम्बर और ईश्वर पुत्र के स्थूल शरीरों में कभी अन्तर्विष्ठ शक्ति, तथा तपस्वियों के स्थूल शरीरों में कभी अन्तर्विष्ठ शक्ति है।

शक्ति (Power)

आदमी रूप, स्थूल शरीर में अन्तर्विष्ठ शक्ति, तथा हवा, पानी एवं धरती के ऊपर, धरती के भीतर, के अनेक पशुओं, पक्षियों, कोड़ों, मकोड़ों, पत्तियों के स्थूल शरीरों में अन्तर्विष्ठ शक्ति सभी परम शक्तिमान के ही अंश हैं।

पुत्र भक्त के समक्ष मुख्यतः ये ही तीन शक्तियां हैं। जो हमको, आपको प्रभावित करती हैं, प्रज्वलित करती है।

लेकिन ये शक्तियां ऐसी ही नहीं हैं। इन शक्तियों के श्रोत (channel) हैं। और श्रोत, मूल श्रोत से अन्तिम श्रोत तक बिभिन्न आध्यात्मिक नामों से सम्बोधित किए जाते हैं। जो निम्न प्रकार है।

(मूल श्रोत) **ब्रह्म** (महाकाल)

परः ब्रह्म—परः शिवः

परम पिता—परमेश्वर—परम—आत्मा

परम शक्तिमान

के नाम से सम्बोधित किए जाये जाते हैं। किन्तु यह स्थिति नाम रहित (nameless) है। कालरहित (timeless) है। असीम (Limit less) है। रूप रहित (formless) हैं। शाश्वत (eternal) है। जन्म-मरण के बंधन से मुक्त, अदृश्य स्थिति है, विस्तृत है।

शक्तिमान

लेकिन वह स्थिति स्वतः स्पन्दनशील होने से वे सूक्ष्म रूप काल (Time with subtle body) में परिणत होकर, उदय (जन्म) स्थिति (जीवन) लय (मरण) गुणों का ब्रह्मा..........विष्णु ......महेश-महाचित्त की शक्तियों से सृष्टि का संचालन करते हैं।

छोटे बड़े सभी देवता, अवतारी, ऋषि, मुनि, सिद्ध, मनुष्य पित्तर सूक्ष्म शुद्ध आत्मा रूपों में काल के अधीन ही स्थित होते हैं। और दानव, भूत, पिशाच आदि अशुद्ध आत्माएं भी काल के अधीन स्थित होते हैं।

शक्ति

लेकिन वे सूक्ष्म रूप चित्त, आत्मा (subtte Spirit) दोनों, विशुद्ध एवं अशुद्ध स्थिति में, प्राकृतिक पंच तत्वों में घनी .त होने के लिए अवतरित होते हैं। और पूर्व में स्थित नर एवं नारी के मिश्रित (स्वेत+रक्त) विन्दु में प्रवेश पाकर स्थूल रूपों में प्रगट होते हैं। उदय

होते हैं। जन्मते हैं। सभी इसी तरह आते हैं। शुद्ध चित्त पवित्र दम्पति के घर आते हैं और अशुद्ध चित्त अपवित्र दम्पति के घर आते हैं। कर्म के मुताबिक, पूर्व संस्कार के मुताबिक शुद्ध या अशुद्ध चित के साथ प्रकृति में विभिन्न शरीरों को धारण करते हुए आते है, कुछ समय तक स्थूल रूपों में जीते हैं और फिर चले जाते हैं। इस तरह के आने, जीने और जाने में सभी—

महाकाल एवं काल

से प्रभावित होते रहते हैं।

कोई नहीं वचते हैं।

क्योंकि सभी तो उसी के ही अंश हैं।

लेकिन सब रूपों में उत्तम रूप, आदमी, में बुद्धि के अतिरिक्त गुण विवेक होने के कारण से वे बचने का उपाय करते हैं। और इस वचने के प्रयास में महाकाल काल एवं उनके अन्य विभिन्न शुद्ध एवं सूक्ष्म रूपों को खुश करने का कोशिश करते है। और इस कोशिश में उन रूपों को प्रिय (dear) शब्दों (sound) का उच्चारण करते हैं। कष्टों को टालने से मृत्यु को टालने में देवों को प्रिय उन शब्दों के प्रयोग से साधकगण एक दो बार तो अवश्य ही सफलता प्राप्त करते हैं। देवों को प्रिय वे शब्द विलक्षण (peculiar) होते हैं। और इसी कारण वे मंत्र कहे जाते हैं। इन शब्दों को, इन शब्द मालाओं को पौराणिक से भी पौराणिक ऋषियों ने मुनियों

ने कठोर तपस्या के बाद महाकाल की कृपा से महाकाल के ही ज्ञान भण्डार से खोज निकाला था। इसलिए मंत्र कब खोजा गया किसके द्वारा खोजा गया इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है। परन्तु ये देवों के प्रिय शब्द (मंत्र) सृष्टि के आरम्भ से कई युगों क बीतने के बाद भी भुलाय नहीं गए। गुरू और शिष्य के श्रोतों में प्रवाहित होते रहे। क्योंकि इन शब्दों का हमेशा इस्तेमाल होते रहा हैं। पुस्त दर पुस्त के पुत्रों के द्वारा अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इन शब्दों को उच्चारण करने वाला मंत्री प्रिय भाषी होता है। क्योंकि उनकी प्रवृति देवों को ही खुश करने की होती है।

प्रिय शब्दों का जानकारी हासिल कर हमें भी प्रियभाषी होना चाहिए। इसी गुण से हम काल के समीप पहुच सकते है। उनकी शक्तियों का अर्जन कर सकते हैं। मनन के द्वारा हम अपना त्राण (protection) कर सकते हैं।

मंत्र

ऐसा कहना उचित है कि हरेक देवी के देवता के अलग मंत्र है। हरेक मंत्र के अलग देवी एवं देवता हैं। क्योंकि हरेक शब्द के अलग अलग प्रभाव है। और देवी एवं देव के अनुकूल ही अलग प्रभाव है।

व्योम में सबका मूल—यम—है इनका प्रिय शब्द मंत्र "रँ" है। यह बृहद ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म विस्तृत रुप के

कम्पन का शब्द है। उनसे परिवर्तित काल है इनका प्रिय शब्द, मंत्र "क्रीं" है। यह इच्छा, ज्ञान, क्रिया से युक्त सृष्टि कल्पना का शब्द हैं। क्योंकि यही स्थिति ही सृष्टि ओरम्भ होने की स्थिति हैं। काल सृष्टि आरम्भ करते हैं और उनके सृजन की क्रिया में :-

प्रथम अहं (मैं) एक आत्मा के अभिव्यक्ति प्रथम सृजित ब्रह्मा बिष्णु महेश हैं।

जन्म-जीवन-मरण के प्रतीक शक्तियां हैं। उनके एक शक्ति के तीन में विभाजित शक्तियों का मंत्र "ॐ" है।

यह आदित्य के आरम्भिक सृजन का आरम्भिक शब्द है।

काल के इन्ही तीन अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों के अधीन काल के अंश जीव, प्राकृतिक पंच तत्वों में लिपटे जन्तु बनकर जन्मते हैं, जीते हैं और मरते हैं।

और काल के ही इस शाश्वत नियम, जन्मने जीने और मरने के द्वारा अवतारी, पैगम्बर, ईश्वर पुत्र सहित सभी एक समान प्रभावित होते रहते हैं। कोई बच नहीं पाते हैं। वही बचते हैं जो मंत्रों के उच्चारण के द्वारा तपस्या से शुद्ध होकर समाधि में अपने को काल में ही विलय करते हैं। विलय होने के बाद भी उनके बारे में जाने नहीं जा सकते हैं। उत्तराधिकारियों के द्वारा भी जाने नहीं जा सकते हैं। क्योंकि इश्वरीय कृपा एक अकेला उन्हीं में जागृत हुआ और एक अकेला

उन्हीं में अन्त हुआ। केवल उन्हीं के सम्बन्ध में, उन्हीं के पुस्त दर पुस्त के उत्तराधिकारियों के द्वारा जाने जा सकते हैं, जो अपने कुलाचार में, अपने कुल जगत में, जन्मते हैं, जन्म कर उन्हीं शक्तियों का मंत्रोच्चारण करते हैं। और उसके बाद शुद्ध स्थिति में पुत्र को चेला बनाकर, कुलाचार का शिक्षा देकर, मरते हैं।

रहस्य

उन शक्तियों का रहस्य सृष्टि में परिलक्षित है। जिसे उस समय के ऋषियों एव मुनियों ने राजा दशरथ के प्रथम पुत्र में, उन्हीं अपूर्वोक्त शक्तियों के असाधारण सामंजस्य को पहचाना था।

इस कारण उन शक्तियों के प्रिय शब्दों (मंत्रों) के संयुक्त शब्द, (रं ॐ) मिलाकर, उनका नाम "राम" रखा था। उन्हे राम शब्द से सम्बोधित किया था। शब्द राम, एक अवतारी के नाम के साथ ही साथ मंत्र भी है, बशर्ते कि उस नाम के उच्चारण के साथ उन शक्तियों का भी ध्यान किया जाय।

उसी तरह, देवकी के एकलौता पुत्र में उस समय के ऋषि गार्गी ने उस आकर्षण की शक्ति को पहचाना था, जो आकर्षण की शक्ति "काली" में है। इसलिए उस शक्ति के प्रिय शब्द मंत्र) "क्री" एवं उस शक्ति के गुण (कर्षन्ति, आकर्षन्ति) को मिलाकर उनका नाम ऋषि के द्वारा "कृष्ण" रखा गया। उसी तरह ही शब्द "कृष्ण" अवतारी के नाम के साथ ही साथ

मंत्र भी है, बशर्ते की उस शब्द के उच्चारण के साथ उस शक्ति (काली) का ध्यान किया जाय।

भागवत गीता में भगवान कृष्ण ने अपना सखा श्री अर्जुन को इन शब्दों में अपना परिचय साफ बताया था "कालोस्मि-मैं काल हूँ"। यह उस समय की बात है जब अर्जुन ने, भगवान श्री कृष्ण के विराट रुप को देखने के बाद पूछा था। कि इस रूप में आप कौन है ?

(भा० गी० अ० ११ श्लोक ३१)

गायत्री मंत्र

ब्रह्माण्ड-वृहत-ब्रह्माण्ड-क्षुद्र ब्रह्माण्डों, देव-परम देव, जीव परमजीव, चित्त-परमचीत, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक के सम्बन्ध में इतनी जानकारी हासिल करने के बाद, चलिए आज हम उस मंत्र का व्याख्या करें, जिसकी शास्त्रों में चर्चा है। और लोगों के बोली में गायत्री मंत्र के नाम से विख्यात है। और जिसे योग्य साधक के द्वारा ही प्रभावकारी ढंग से उच्चारण किया जा सकता है।

"ॐ भू भूवः स्वः, तत् सवितु वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात ॥"

ॐ—ओम-तीन अक्षरों (नाश नहीं होने वाला) अ+उ +म के मेल से बना है। जो ब्रह्मा (जन्म) विष्णु (पालन) एवं महेश (विलय) शक्तियों से युक्त, देवों के प्रतीकात्मक

अक्षर हैं। वे तीनों देव सृष्टि में त्रिकोण यंत्र

अ-ब्रह्मा △ उ-विष्णु बनाते हैं।

म-महेश

अतः ॐ तीनों देव पुत्रों के सम्बोधनार्थ एक प्रतीकात्मक शब्द है। याने हमने ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को अलग-अलग सम्बोधन नहीं करके एक शब्द "ॐ" के द्वारा एक साथ तीनों को सम्बोधन किया और फिर एक साथ एक त्रिकोण यंत्र-स्वस्तिका में प्रदर्शित कर दिया।

अब उन तीन देवों के एक शब्द "ॐ" के द्वारा एक साथ सम्बोधन के बाद-भू-पृथ्वी (भूमि तत्व) साधक के अपने स्थान से प्रथम दृष्टिगोचर, क्षिति, यह प्रथम ध्यान का लोक-

भूवः- दृष्टि को ऊपर उठाते हुए, सौर्य मण्डल के अन्दर का वायू मण्डल (तापयुक्त प्रकाशमें) यह द्वितीय ध्यानका लोक-

स्वः- उर्ध्व गति होकर देखते हुए. बिलकुल उपर की ओर असिमीत आकाश, व्योम मण्डल, (ताप रहित प्रकाश में) यह तृतीय ध्यान का लोक-

इन तीनों लोको-सहित पूर्ण ब्रह्माण्ड, तत् सवितु-के निर्माता, या उसके निर्माता (Creator सविता) का-

वरेण्यँ- हम वर्णन करें, स्तुति करें।

जो सविता यंत्र त्रिकोण के मध्य में नाद विन्दु △ स्वरुप विद्यमान है। और जो सविता यंत्र त्रिकोण के तीनों देवों की मां, त्रिपुरा सुन्दरी त्रयम्ब की हैं, की वन्दना करें।

वही—जिस सविता से हम सभी आते हैं, जिनकी कृपा से हम सभी जीते हैं, और अंत में, जिनमें हम सभी प्रवेश पाते हैं, की वन्दना करें।

भर्गो—इस आदित्य देव-उस प्रथम आत्मा, (भ-भवति-होने वाले-र-रमने व्यापने, वाले-गो-गच्छ-जाने वाले) याने आने, जीने और जाने वाले।

देवस्य—देवता का-

धीमहि—हम ध्यान करें, चिन्तन करें। जिससे कि वे-

धियो—बुद्धि, विवेक के माध्यम से-

यो न—हम सब का-

प्रचोदयात—मार्ग दर्शन करें।

याने हम सब की बुद्धि, विवेक का वे मार्ग दर्शन करें। "ॐ"

ॐ—पृथ्वी मण्डल, वायु मण्डल, आकाश मण्डल, इन तीनों मण्डलों (लोकों) के निर्माता (सावित्री) का हम स्तुति (पूजा) करें। उनमें (तीनों लोकों में) व्यापने (जन्मने, जीने और जाने) वाले आदित्य देव (प्रकाश रुप प्रथम आत्मा) का हम ध्यान करें। वे, हमारी बुद्धि-विवेक का मार्ग दर्शन करें। ॥ॐ॥

— : —

सविता के सृष्टि का रहस्य

ऐसी बात नही है कि, सृष्टि एक बार आदि में हो चुकी है। और अब नही होती है। अब भी होती है।

हरेक क्षण पूनर्सृजन का क्षण है। पूर्न सृजन होता है। यह सविता के अविनाषी "काम्न कला" के कारण से है। जो स्वभाव से हरेक-नर-नारी में विद्यमान है। वह महाशक्तिमान का "काम कल" है। जो नर-नारी का प्रेरक (promptor) है।

तो प्रेरणा के बदौलत मिलन से उत्पन्न सम्मिश्रित विन्दु में क्या-क्या है? ० नारी का रक्त विन्दु ० नर का श्वेत विन्दु और शक्ति (power) है। इस सम्मिश्रित विन्दु के फैलाव के साथ यत्र त्रिकोण △ का सृजन होता है तो उस त्रिकोण में क्या-क्या है? परः वक (Suprem Speech) है। परः बीज (Sureme Seed) है। पश्यन्ति- मध्यमा बैखारी शक्तिः वग भाव-कामराज है।

तीन मण्डल है
चन्द्र - सूर्य - अग्नि
तीन लोक है
पाताल - स्वर्ग - नर्क
तीन लिंग
स्थयम् वान इतर
तीन वर्ण है
अ--क—त
तीन गुण है
सत्व—राजस—तामस
तीन भाव है
दिव्य भाव - वीर भाव - पशु भाव

तीन वेद है
श्रग—साम—यजु
तीन कारण है
इच्छा—ज्ञान—क्रिया
इच्छा ही सृष्टि का प्रथम कारण है।
काम+कला
शिव+शक्ति
ये सभी अ+ह—अहं (मैं) में पूर्ण है।

ललित सृंगता △ त्रिपुरा सुन्दरी का सृष्टि-कल्पना का प्रणवा "ॐ" मूल मंत्र है। सविता का यही "तत्व ज्ञान" है। बड़े-बड़े योगी, ऋषि, मुनि, तप से विशुद्व आत्मा में इसी ज्ञान को पाते हैं। अनुभव करते हैं। और पाकर स्वेच्छा से शरीर त्याग कर विशुद्व आत्मा में, महाशुद्व परमात्मा में घुलमिल जाते हैं। और वही असली मृत्यु है।

....

इस ज्ञान का प्रभाव

शरीर हल्का होकर सिहर उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आंखों में पानी भर जाता है, विशेष प्रभाव में ऐसा लगता है कि शरीर हवा में उठता है।

— : —

नोट :- सृष्टि का कारण—"इच्छा" को जिसने बश में कर लिया वही दिग्विजयी है। वही सच्चा सन्यासी है।

ऐसा भी समझा जा सकता है। वैसा समझना उचित भी है। "इच्छा" को जिसने जीत लिया उसने सष्टिकर्त्ता को ही जीत लिया।

— : —

हम कैसे आते हैं ?

"अदृश्य विस्तृत ब्रह्म" से उत्पन्न
याने "महाकाल" से उत्पन्न
"सूक्ष्म रूप काल" के
इच्छा ज्ञान क्रिया
की शक्तियों का अदृश्य प्रभाव
पति एवं पत्नी
पर होता है।
परिणाम
दोनों का मिलन होता है
उससे उत्पन्न

१□ □१

पति के श्वेत बिन्दु एवं पत्नी के रक्त बिन्दु
का अत्यन्त परोक्ष में

□+□ १+१—२

"मिलन एवं मिश्रण" होता है
इन्ही जुगल बिन्दुओं में "शक्ति के अंश" का प्रवेश से
सम्मिश्रित "बीज रुप बिन्दु" का उदय होता है।

+□+□ १+१+१-३

और "शक्ति" के अंश से शक्तिमान "चित्त" का निर्माण पूरा होता है। फैलाव होने के कारण "बीज रूप बिन्दु" के फूटने से प्राकृतिक पंच तत्वों का समावेश होता जाता है और चित्त पंच तत्वों का ढकन का विकास करते जाता है और स्थूल रूप "शरीर" का निर्माण पूर्ण होता है। इसी शरीर का नाम तन है। और तन की रक्षा के लिए ही तंत्र शास्त्र है।

....

हे दम्पति !

आप मालूम करते हों नहीं करते हों, विश्वास मानिए, पुनः सृजन के लिए कोई एक अदृश्य शक्ति, आपको कुछ करने के लिए मजबूर करते हैं। उस अदृश्य उत्प्रेरक का ज्ञान हासिल करें। और उनसे "कुलाचारी पुत्र" का ही मांग करें। जो आप दोनों का, जिन्दगी में तो क्या—मरणोपरान्त का पुजारी सेवक होगा।

— : —

□ उस बीज रुप सम्मिश्रित विन्दु में क्या-क्या है ?

(१) ब्रह्मा-विष्णु-महेश, की शक्तियां हैं।

(२) "अ" से लेकर "ह" तक ५० वर्णाक्षर हैं, जिसे देवनागरी लिपि कहते हैं। कुछ विद्वान ५२ वर्णाक्षर का हिसाब बतलाते हैं। यह गलत मालूम होता है, क्योंकि कुण्डालिनी योग में चन्द्रलोक के "सहस्त्र-पद्मा" पचास के गुणा में ही पूर्ण होता है। इस कारण ५० वर्णाक्षर सही है।

(३) ब्रह्म ब्रह्माण्ड के सारे देव गण हैं।

(४) परः ब्रह्म के "सत्व, राजस-तामस" गुणों का सम्मिश्रण है।

(५) सभी वेद एवं शास्त्र हैं।

(६) प्रणव-मंत्र "ॐ" है।

(७) शब्द "धक" है।

....

समय के गुजरते □ सम्मिश्रित विन्दु के फूटते के साथ "क्षिति—जल—पावक—गगन—समीरा" का झट से प्रवेश होता है। और पूर्ण शरीर (क्षुद्र ब्रह्माण्ड) का विकास आरम्भ होता है। उस बनते शरीर में अव शब्द (Sound) पश्यन्ति-मध्यमा-वैखारी (Spoken speech) का भी विकास होता है। जिस शरीर में शब्द का विकास नही होता है वही "गूंगा होता है।

....

गर्भ में स्थिति "अदृश्य रूप शरीर" औसतन नौ महीने के बाद जब प्रगट होता है, तब लड़का-लड़की का पहचान होता है। इसी तरह के प्रगट रुपों में हम-आप हैं और पृथक बनाने के फेर में विभिन्न धार्मिक नियमों में फसे हैं। जो हमारा भ्रम है।

— : —

चाहे हम समय के पहले या समय के अन्त में मरते हैं। हम कुल धर्म के कुलाचारी- दैविक प्रकाश में प्रवेश करते है। पृथक धर्म के तो 'प्रकाश' से पृथक ही रह जाते हैं। गहनतम अंधकार में ही सदा के लिए खो जाते है।

SONS AND Co.

Kindly listen for a while
Then meditate for a while
It is a question worth while
For you to answer erst while
After leaying the religion taditional
Atter adop ting a religionoptional
Whaterer merit you mey acquire
Who is going to recognise it where ?

Whether your wife or your son ?
Or gny of your kith or kin ?
No, my dear, none of your relation
During the life or after death
All care for their life and health
None mourns for no body's death
Your life's merit ends in fiasco,
As if there is no son's and co.
So many priest as fake-fathers
Preached the same with cheers
By singing the prayers in one-lore
As there is in that nothing more
But all died the Death as animals
Devoid of water and food materials
All new comers prayed for Prophet
None bothered for Father's-epithet

Alas ! it is a position pitiable
For those who are sensible
But wise have their own system
Which is reflected in son's custom
It is the worshiping in counter
Of the creator and re-creator

By the sons and sons in succession
In their purest Kuldharma-Sanatan

Note--Creator-the Supreme. Re-creator-begetter father, mother.

Wise-the world has been used to indicate Kols of Kolahan in the district of Singbhum.

None mourns-It is true in the sense, because mourning becomes customory and temporary when it is simply a mourning. In distinct religions mourning does not convert in memory, associated with worshiping by offerings of food and water, as Divine-duty towards the departed soul. just as under the purest conditions of Kuldharma, by a Kolson.

--Writer.

KULACHARI

Son questions ?
You are nothing else but a son
I am nothing else but a son
A son is asking from another son
What should be your Religion ?
What should be our Religion ?
The world is full of Isms
Hindu-Ism and Christian-Ism
Sikh-Ism and Islam-Ism
What should be the sons-Ism ?
Is there any other than Gene-Ism ?
I salute my own-self.
You salute some other's self.
Just before us is the Parents self.
Why should not a son self
Then worship his Pedigree-self. ?

My self and your self
Each is the embodied self
Deceased is the body-less-self
Is there other difference of a self
Between internal and external self ?

You may have some other notion
But all the Prophet or Incarnation
In the past had come as a son
They died in times as a father
Have they not become the Great-grand-father ?

Believe me 'O' my brothers
If son will worship his father
They will certainly care each-others
In their journey to the God's border
Saluting their Gene-Ism in order

Note :- You-includes all those, who have taken birth.
Our-includes all sons as one classin creation.

Self-chif, Atma, Jiva, Spirit, Ruh, Rowa.

Internal and External selves are the part and parcel of the Supreme-Self.

Father-begetter, pedigree-ancient deseent.

-Writer.

उपलक्षों में वाद्य पूजा, कीर्त्तन

[क] दूताचार- ईश्वर के दूत अवतारी, पैगम्बर, पुत्र, जैसे-राम, कृष्ण, महामद एवं क्रीस्त एवं तपस्वियों-महावीर एवं गौतम आदि के सम्मानार्थ आचार है। इनके नाम एवं रूप की आराधाना की जाती है।

— ० —

कुलार्णव—Genealogical Oceam.

कुल की सीढ़ी—नीचे में नव-दम्पति से आरम्भ होकर, शिखर में अतीत, सूदूर अतीत के प्रथम दैविक दम्पति तक पहुंचाती है। पुत्र योगी एवं बन्धु योगिन, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के, सम्पूर्ण कुल के, निज कुल के सिलसिले में ही सेवक एवं पुजारी हैं।

— : —

कोई पूरब मुंह करके, कोई पश्चिम मुंह करके, अकेला या सामूहिक, अराधना करते हैं। कुछ एक बड़े उंचे, सामूहिक घर के छत्त के अन्दर सामूहिक अराधना करते हैं। कुछ भोग अर्पणों के साथ, पर बहुत अधिक उसके बिना ही अराधना

कुलाचार में, खूद अपने रहने के घर में, और सामूहिक रूप से खुले आसमानी छत के नीचे, उर्ध्वगति होकर, याने उपर आसमान की ओर मुंह करके ही अराधना करते हैं। यह उत्तम है। क्योंकि, आखिर सभी दिशाओं का एक दिशा आसमान ही है।

आ चा र

कुल मिलाकर आठ आचार हैं

(नीचे से ऊपर की ओर पढ़े)

आचार (CONDUCT)

दैविक ज्ञान (Knowledge) एवं दैविक अनुभव (Divine experience), प्राप्त करने के, दविक आचार Divine Conduct) है। यह इस प्रकार भी कहा जा सकता है, कि सामाजिक एवं धार्मिक शिष्टाचार के आगे बहुत आगे दैविक अनभव प्राप्त करने के दैविक शिष्टाचार (Divine discipline) है। ये दैविक आचार कुल मिलाकर आठ ही है। जो निम्नप्रकार हैं।

सत् कर्म	सत भाव में समाधिस्त		लक्ष्य
कुल योग	दिव्य भाव में योगी	८	पुत्र, निज कुल के साथ देव कुल का समन्वय (connection) स्थापित करता हैं। ८ पुत्र, योगी पित्तरों एवं देवों को अर्पित पवित्रत्तम भोजन का सेवन करता है और धर्म, अर्थ, काम मोक्ष का विवेक ज्ञान के साथ प्राप्त करता है। कुल से ओझल नही होता है।
योग	दिव्य भाव	७	सृजन की क्रिया से परे साधु, संत एवं योगी निष्काम साधना के द्वारा विवेक ज्ञान के साथ सिद्धि को प्राप्त होता है। सिद्धि का अन्त करना ही ७ सिद्धान्ताचार है।
साधना	वीर भाव में मनुष्य	६	सृजन की क्रिया में लिप्त या निर्लिप्त होकर निष्काम साधना से मन को जीतना वामाचार है। और इस प्रकार पशु भाव से ६ बुद्धि को लड़ाई करते हुए वीर भाव में पहुचना होता है।
		५	सकाम साधना के द्वारा मंत्रों को सिद्ध किया जाता है। देवी देवताओं के तारण एवं मारण शक्तियों के लिए वर प्राप्त करना ५ दक्षिणाचार है।
उपासना	पशु	४	शिव लिंग के द्वारा शिव के उपासक ४ शैवाचारी है।
अन्तः पूजा	भाव रत	३	चित्र के द्वारा बिष्णु का ३ उपासना वैष्णाचार है। जो शाकाहारी उपासना हे।
		२	चित्र के द्वारा २ सृजनकर्त्ता ब्रह्मा का उपासना ब्रह्माचार है।
आध्यापन	आदमी	१	अध्ययन १ करना वेदाचार है। आश्रमों में गुरू चेला के सम्बन्धों में, चार वर्णों का जिन्दगी गुजारते हुए चारों वेदों का अध्ययन किया जाता है। इसके द्वारा दैविक कार्यों के लिए अपना आचरण को सुधारा एवं सम्भाला जाता है। पूजा, होम. यज्ञ के तरीके सीखे जाते हैं। एवं पूजा होम यज्ञ किए जाते हैं। इन क्रियाओं से अपने को शुद्ध किया जाता है। और अन्य उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम आचारों के पालन के योग्य बनाया जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह धोबी के जैसा मन के मैल के धुलाई का आचार है।

महाशक्तिमान
अर्धनारीश्वर
कुल अकुला
कुलाचार है।
के कुल का
आचार
कुलेश्वरी
कुलेश्वर
त्रयम्बकी
त्रयम्बका
महेश
बिष्णु
ब्रह्मा
किन्नर आत्माएँ
महान आत्माएँ
पित्तर आत्माएँ

आ चा र

कुल मिलाकर आठ आचार हैं

(नीचे से ऊपर की ओर पढ़े)

आचार (CONDUCT)

दैविक ज्ञान (Knowledge) एवं दैविक अनुभव (Divine experience), प्राप्त करने के, दविक आचार Divine Conduct) है। यह इस प्रकार भी कहा जा सकता है, कि सामाजिक एवं धार्मिक शिष्टाचार के आगे बहुत आगे दैविक अनभव प्राप्त करने के दैविक शिष्टाचार (Divine discipline) है। ये दैविक आचार कुल मिलाकर आठ ही है। जो निम्नप्रकार हैं।

सत् कर्म	सत भाव में समाधिस्त		लक्ष्य
कुल योग	दिव्य भाव में योगी	८	पुत्र, निज कुल के साथ देव कुल का समन्वय (connection) स्थापित करता हैं। ८ पुत्र, योगी पित्तरों एवं देवों को अर्पित पवित्रत्तम भोजन का सेवन करता है और धर्म, अर्थ, काम मोक्ष का विवेक ज्ञान के साथ प्राप्त करता है। कुल से ओझल नही होता है।
योग साधना	दिव्य भाव	७	सृजन की क्रिया से परे साधु, संत एवं योगी निष्काम साधना के द्वारा विवेक ज्ञान के साथ सिद्धि को प्राप्त होता है। सिद्धि का अन्त करना ही ७ सिद्धान्ताचार है।
	वीर भाव में मनुष्य	६	सृजन की क्रिया में लिप्त या निर्लिप्त होकर निष्काम साधना से मन को जीतना वामाचार है। और इस प्रकार पशु भाव से ६ बुद्धि को लड़ाई करते हुए वीर भाव में पहुचना होता है।
		५	सकाम साधना के द्वारा मंत्रों को सिद्ध किया जाता है। देवी देवताओं के तारण एवं मारण शक्तियों के लिए वर प्राप्त करना ५ दक्षिणाचार है।
उपासना अन्तः पूजा	पशु भाव रत	४	शिव लिंग के द्वारा शिव के उपासक ४ शैवाचारी है।
		३	चित्र के द्वारा विष्णु का ३ उपासना वैष्णाचार है। जो शाकाहारी उपासना है।
		२	चित्र के द्वारा २ सृजनकर्त्ता ब्रह्मा का उपासना ब्रह्माचार है।
आध्यापन	आदमी	१	अध्ययन १ करना वेदाचार है। आश्रमों में गुरू चेला के सम्बन्धों में, चार वर्णों का जिन्दगी गुजारते हुए चारों वेदों का अध्ययन किया जाता है। इसके द्वारा दैविक कार्यों के लिए अपना आचरण को सुधारा एवं सम्भाला जाता है। पूजा, होम. यज्ञ के तरीके सीखे जाते हैं। एवं पूजा होम यज्ञ किए जाते हैं। इन क्रियाओं से अपने को शुद्ध किया जाता है। और अन्य उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम आचारों के पालन के योग्य बनाया जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह धोबी के जैसा मन के मैल के धुलाई का आचार है।

महाशक्तिमान

अर्धनारीश्वर

कुल अकुला

कुलाचार है।

के कुल का

आचार

कुलेश्वरी

कुलेश्वर

त्रयम्बकी

त्रयम्बका

महेश

विष्णु

ब्रह्मा

किन्नर आत्माएँ

महान आत्माएँ

पित्तर आत्माएँ

करते हैं। पर ये सभी स्वार्थ-वश ही अराधना करते हैं।

पित्तर आत्माओं एक देव आत्माओं को स्वीकार्य समी तरह के भोग अर्पणों के साथ उन्हे खुश रखने मात्र के लिये, नि.स्वार्थ अराधना करते हैं। मात्र अपने जन्म के श्रोत के, कुल के प्रति कर्त्तव्य से, प्रेरित सेवा की भावना को पूरा करने के लिये अपने कुल सहित देव कुल का अराधना करते हैं।

शुरू के उपरोक्त केवल आठ ही आचार हैं। जो (१) वेदाचार (२) ब्रह्माचार (३) वैष्वचार (५) शैवाचार (५) दक्षिणाचार (६) वामाचार (७) सिद्धान्तचार (८) कुलाचारहै।

ये आठ आचार पौराणिक से भी पौराणिक, ऋषियों, मुनियों के द्वारा आध्यात्मिक जगत के, ज्ञान एवं तत्व ज्ञान के खोज में तपस्या के दौरान अनुभव किए गये थे। और प्रत्येक आचार अपने-अपने स्तरों में प्रामाणिक (reliable) आचार घोषित किए गये थे। भारत के अन्दर ये आठों आचार अभी भी शहरों से लेकर सूदूर जंगलों के गावों तक में विभिन्न जातियों के भक्तों के आचरणों में पाए जाते हैं। वे अपने क्षमता के मुताबिक उन अलग-अलग आचारों का अनुशरण करते हैं।

कुलाचार, सब आचारों में कठिन है। पर सब आचारों में उत्तम है। चोटी का आचार है। यह आचार एक खास तरह के लोगों के द्वारा गुप्त से भी गुप्त रुप में, पर शुद्ध रुप में अनुशरण किए जाते हैं। इन्होंने युगों से इस आचार को, अपने हृदय के अन्दर ऐसा छिपा करके रखा है, जैसा एक प्रेमिका, अपने प्रेमी के प्यार को दूसरों से छिपा करके रखता है। मैंने वर्त्तमान के इस कलियुग में, मां कुलेश्वरी की कृपा से ही, उसे प्रगट करने का कोशिश किया है। इसे सभी तरह के भक्तों के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रगट करने का कोशिश किया है। क्योंकि कुलाचार के गरिमा का ज्ञान के अभाव में, अन्य आचारियों के भक्त, कुलाचारियों को नीचा समझने लगे हैं। और कुलाचारी गण हीनता महसूस करने लगे हैं। घबड़ाने लगे हैं।

कुलाचार सृष्टि कल्पना "ॐ" के प्रथम दैविक माँ कुलेश्वरी के सृजन के आरम्भ का आचार है। और बाकी आचार उन्हीं के सृजन के बाद के आचार हैं। इसीसे कुलाचार के उत्कृष्ठता का अन्दाज कर लीजिए।

वे आठ आचार पूर्ण रुप से, सभी तरह के भक्तों के द्वारा उस समय अनुभव और अनुपालन किए जा रहे थे, अवतारी, पैगम्बर एवं ईश्वर पुत्र इस पृथ्वी पर प्रगट याने पैदा नहीं हुए थे। उनके पैदा होने के बाद, उनके नाम के सरल आचार, उनके चेलों एवं अनुयायियों के द्वारा बनाए गये। और फिर बाद के समयों में भी और अधिक सरल बनाए जाते

रहे। लोग, वैदिक युग के कठिन आचारों के मुकाबिले, अवतारी, पैगम्बर एवं ईश्वर पुत्र के नाम के सरल से भी सरल बनाए गये आचारों का आसानी से अनुशरण करते गये। इस तरह वैदिक युग एवं उससे भी आगे के वे आचार लोगों के स्मरण से छूटते गए और अभी उन आचारों के सम्बन्ध में कोई सोचते तक नहीं है। अनुशरण करने की बात तो दूर हीं रही।

दोनों तरह के परिस्थितियों का अगर सही विश्लेषण किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि वास्तव में ये अवतारी, पैगम्बर एवं ईश्वर पुत्र कलियुग के मानसिक दशा के कमजोर लोगों के बीच एक सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करने वाले, ईश्वर के दूतों के सिवाए अन्य नहीं थे। वैसे दूत तो ईश्वर की ही कृपा से समय-समय पर बहुत प्रगट होते रहते हैं। लेकिन जिनके बारे में वर्णन किया गया और जिनकी स्तुति की गई, उनको सामाजिक एवं कौमी आदर्श पुरूष का मान्यता मिल गया। और वे सबके स्मरण के प्रतीक बने। वैसा अवतारी तो खुद भक्त भी है। क्योंकि वे भी ईश्वर के अंश, ईश्वर की कृपा से ही माता-पिता के द्वारा पृथ्वी पर कुछ समय के लिए प्रगट याने पैदा हुए हैं। जैसा कि अवतारी, पैगम्बर एवं ईश्वर पुत्र, माता पिता के द्वारा, ईश्वर के अंश होकर ईश्वर की कृपा से ही कुछ समय के लिए पैदा हुए थे। और समय होते के साथ लौट गये थे। अगर साधारण भक्त भी पहल करें तो वैसा ही प्रभावशाली बन सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

लेकिन गत ढाई हजार वर्षों के अन्दर, ईश्वर के दूतों

के, भिन्न-भिन्न स्थानों के भिन्न-भिन्न सामाजिक एवं आर्थिक, वातावरणों वाले लोगों के बीच पैदा होने के कारण और उनके द्वारा उस तरह के लोगों के बीच, भक्ति का आदर्श, न्याय का आदर्श, ज्ञान का आदर्श, ईमान का आदर्श एवं कार्य का आदर्श प्रस्तुत करने के कारण, वहां के लोग उन्हें अपना ही, सामाजिक आदर्श पुरूष भगवान मानने लगे हैं और दूसरों का आदर्श पुरुष नहीं मानने लगे हैं।

इस तरह अपना ही बनाने के प्रयास में उनके नाम की स्तुति के लिए, उनक नाम की भक्ति के लिए अलग-अलग मतों (dogmas) एवं अलग-अलग आचारों (conducts) का प्रचलन आरम्भ किया गया। और इन भिन्न मतों एवं आचारों के द्वारा, अपने सम्बन्धित, अवतारी या पैगम्बर या ईश्वर पुत्र, को इतना ज्यादा मानने लगे कि उनके बिना वे लोग नहीं और उनके नाम के बिना अपना नाम नहीं।

नतीजा यह हुआ कि उस तरह के वे लोग, अपने माता-पिता के महत्व को तो भूल ही गए, यहां तक कि खुद अपना महत्व को भी, वे भूल ही गए।

वास्तव में अगर कहा जाय तो वे आदर्श पुरुष किसी के अपना नहीं थे। और अभी भी शरीर मुक्त याने तनहीन, आत्मा रुप में भी किसी के अपना नहीं है। क्योंकि उनके साथ भक्तों का किसी प्रकार भी अपना रिस्ता जोड़ा नहीं जा सकता हैं। उन्होंने जो कर्म किया था, अपने कर्त्तव्य के लिए ही किया था।

वास्तव में अगर कहा जाय तो, हरेक पुत्र भक्त के लिए अपना, माता-पिता के सिवाए, कोई अपना नहीं है। पुत्र के लिए माता-पिता, मात्र अपने आने याने जन्मने का धारा नहीं है। वे पुत्र के जन्मने का मात्र साक्षी नहीं है। वरन सृजन एवं पुनः सृजन के सिलसिले का खास अपना स्थायी आत्मिक सम्बन्धी है। लोक एवं परलोक का अपना हितैषी है। क्योंकि माता-पिता, पुत्र के जन्मने का खास कारण हैं। और इसी कारण माता-पिता, पुत्र का खास अपना पैगम्बर हैं। और पुत्र भी अपने पुनः सृजन के क्रम में, अपने पुत्र का पैगम्बर हो जाते हैं। ऐसी हालत में निज सम्बन्धी पैगम्बरों का सिलसिला तो, खास अपने वंश में, खास अपने ही कुल में, कायम हो जाता है। पुत्र-दर-पुत्र के सिलसिला में कायम हो जाता है, तो फिर किसी गैर-सम्बन्धी पैगम्बर के प्रति दिवाना होने का क्यों जरुरत है ?

लेकिन इस अपने जन्म को सिलसिला वाली समझदारी के विपरीत समझदारी वालों के द्वारा ईश्वर के दूतों के नाम का अपना एक पृथक धर्म बनाए जाने के कारण ये दूत पैगम्बर उस धर्म के प्रतीक या आधार स्तम्भ कहे जा सकते हैं। सामाजिक या कौमी ढांचे का आधार स्तम्भ कहे जा सकते है। गैर-सम्बन्धी होने के कारण वैसे प्रतीक दूत के भक्ति से अपना तथा अपने जन्म के सिलसिले का कल्याण होने की सम्भावना क्षीण मालूम पड़ती है।

फिर भी किसी एक दूत पर ही आश्रित, आचार वालों को एक शब्द में दूताचारी कहा जाय तो अच्छा है। क्योंकि

बे भिन्न भिन्न जन्मों के सिलसिले का होकर भी एकजुट के एक रट में है।

संताचार—आजकल जगह-जगह, बहुत से संतों के बारे में चर्चाएं होती रहती हैं। ये, संत शहरों में या शहरों के निकट या उंची पहाड़ियों पर अपना एक आश्रम बनाकर रहते हैं। कुछ भ्रमणशील संत हैं। जो विभिन्न स्थानों के मन्दिरों में पहुंचते रहते हैं। उनके सेवा के लिए आश्रम में हमेशा उनके चेले रहते हैं। उन चेलों के द्वारा संत का प्रचार होता रहता है। और कई अनुयायी भी बनते जाते है। ये संत पुनः सृजन की क्रियाओं से विरक्त, संसारिक चहल-पहल की जिन्दगी से विरक्त, अकेलापन का निर्लिप्त जिन्दगी गुजारते हैं। वे कठिन तपस्या के बाद सिद्धि को प्राप्त होने के कारण असाधारण प्रतिभा वाले अवश्य होते हैं।

लेकिन बहुत स्थानों में बहुत से संत होने क कारण, या कभी तो एक ही स्थान में बहुत से सत होने के कारण, सिद्धि को प्राप्त संतों का सही जानकारी कठिन होता है। इसका सरल मापदंड नहीं है। इस कारण बहुत से भोलेभाले अनुयायियों को धोखा भी हो जाता है, पर वे अनुयायी अक्सर संतों के आशीर्वाद के भूखे होते हैं। इसलिए संत के नाम पर बहुत अधिक रुपये भी खर्च कर बैठते हैं। पर इतने खर्चों के बाद और अनुयायी बनने के बहुत बाद में भी संत का आशीर्वाद किनको कितना फलदायक होता है ? इसकी सही जानकारी भी आसान नहीं है।

फिर भी भोले भक्त अनुयायी बनकर, सत संग, औघड़ पंथी, आनन्द मार्ग संग इत्यादि में शामिल होते है और दैनिक आचार करते है। संत के बताए मार्गों को अनुशरण करते हुए आचार करते हैं। इस प्रकार अलग-अलग संतों के अलग-अलग आचार होते हैं। अतः इन विभिन्न आचारों को एक शब्द में संताचार कहा जाए तो अच्छा है। संताचार अस्थायी है। क्योंकि संतकी मृत्यु के साथ ही आचार की मृत्यु भी है।

इस प्रकार इस वर्त्तमान कलियुग में हम पाते हैं कि, सत्य, त्रेता एवं द्वापर युगों के, पौराणिक आठ आचारों के अलावे, अभी और कई आचार होते जा रहे हैं, जिसमें मुख्यतः अभी दो आचार (१) दूताचार एवं (२) संताचार अधिक प्रचलित हैं। इस प्रकार अब हमारे सामने कुल मिलाकर दस आचार हो जाते हैं।

वर्त्तमान में दूताचार और संताचार में अधिक लोगों के शामिल होने का कारण क्या हो सकता है ?

सिवाय इसके और कोई कारण नहीं है, कि लोग बहुत अपवित्र हो गये हैं! लोगों में ऐसी अपवित्रता वर्ण संकर (cross-breed) होने के कारण से है। और युगों से, पिता से पुत्र में शुद्ध पिता के शुद्ध खून के संचार के अभाव के कारण से है। शुद्धता से प्रभावित पवित्रता के अभाव के कारण से लोगों में विवक ज्ञान की और मानसिक दुर्बलता हो गई है। और यह मानसिक दुर्बलता पाश्विक व्याभिचार में परिणत हो गया है। जो अपवित्रता का कीचड़ है।

लेकिन कुलाचार तो कुलाचार ही है। यह तो संसार का ही नहीं, वरन सृष्टि के सभी आचारों का कुलाचार (Totality of ali divine eonducts) है। यह पूरे ब्रह्माण्ड का कुलाचार है, जिसमें सब कुछ का समावेश हो जाता है। इस कारण यह आचार अत्यन्त पवित्रता का आचार है। और वैसी पवित्रता कोलों के सिवाय अन्य किसी में नहीं है।

हे, आदिवासियों! हे, गैर आदिवासियों! इतने कठिन विषय का इतने सरल एवं संक्षिप्त विवरणों के साथ व्याख्या करते हुए भी, क्या आपको अब समझने में कठिनाई होनी चाहिए कि मैं जिस आचार (कुलाचार) का ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, वह सब आचारों में कितना उत्तम है? आध्यात्मिक एवं दैविक ज्ञान की उपलब्धियों का कितनी उंचाई का कितना पवित्रत्तम आचार है?

सृष्टि का मूल आचार ही कुलाचार है। आदि पुरुषों का मूल आचार ही कुलाचार है। इसे छोड़कर अन्य आचारों में आपको भटकना उचित नहीं हैं। कुलाचार पर आधारित आपका धर्म ही कुलधर्म है। तो इतने उत्तम आचार (कुलाचार) के पृथ्वी पर रहते हुए भी लोग अन्य आचारों में क्यों भटकते हैं?

यह तो ठीक वैसा ही हुआ, जैसा कि शुरू में बीज से उत्पन्न बड़ गाछ का धड़ एक ही था, जो जन साधारण के स्मरण में था। और जिसकी छाया में शरण था। बड़ गाच के बढ़ने एवं फैलने के क्रम में मोटे डालों से लटकता जड़ जमीन

में अटक गया और वह लर भी जड़ का रूप धारण कर लिया। ऐसा बहुत सा होता गया। और एक बीज के एक बड़ गाछ के ही अब बहुत से धड़ हो गए। अब बहुत से देखने वालों को पता नहीं है कि मूल धड़ कौन सा धड़ है। जिसका शरण लेना है?

लेकिन जिसने मूल धड़ को हमेशा देखा, और उसे स्मरण में रखा, वे इस मूल धड़ से ही उस बड़ गाछ को पहचानते रहे। मूल धड के इस ज्ञान को जिस पिता ने अपने पुत्र को भी गुरू बनकर ज्ञान करा दिया, वैसा पुत्र चेला ने भी उसी मूल धड़ को हीं बड गाछ का असली रुप में पहचान लिया। और इस तरह इस "पिता गुरू पुत्र चेला" सिद्धान्त के सिलसिले में जो भी पुत्र हैं, वे उस बहुत से धड़ों वाली विशाल बड़ गाछ के मूल धड़ को अच्छी तरह पहचानते हैं। और उस मूल का ही खुद मूल पुत्र होकर पूजा करते हैं। जो मूल के सिलसिले में मूल का, याने पूर्वज पित्तरों के सिलसिले में पूर्वज पित्तरों की पूजा करते हैं, वे पुत्र भ्रम में नही है।

लेकिन जिनके स्मरण से मूल धड गायब हो गया। या जिस पिता ने गुरू बनकर अपने पुत्र को मूल धड़ का ज्ञान नहीं दिया, उस बड गाछ के उस मूल धड का ज्ञान, उनके पुस्त-दर-पुस्त के पुत्रों के स्मरण से भी गायब हो गया। और अब वैसे अज्ञानी पुत्र, मूल धड के सही ज्ञान के अभाव में, डाल से उत्पन्न लर का धड़ को ही असली धड़ या अपना धड समझने लगे हैं। मानने लगे हैं। और उसकी ही वे पूजा करने लगे हैं। ये निश्चय ही भ्रम में हैं। और वे जिस तिस

धड की शरण पाना चाहते हैं ।

प्रथम सृष्टि का बीज रूप आत्मा, परमात्मा, पहले एक ही था। जो पूर्वज जन साधारणों के स्मरण में था। और उनके ज्ञान में था। जिस पूर्वज ने, गुरू बनकर, इस ज्ञान को, अपने पुत्र के स्मरण में उतारा। और इस तरह जिस पूर्वज के पुस्त-दर-पुस्त, के पुत्रों ने पिता के रूप में गुरू बनकर अपने-अपने पुत्रों में उस ज्ञान को उतारा, उसी पूर्वज के कुल के पुत्रों में यह ज्ञान, स्मरण में उतरते गया और उसी ने पित्तरों के सिलसिले में, पितरों के द्वारा ही, प्रथम बीज रूप परमात्मा (कुलेश्वरी) की सही पूजा किया। वे भ्रम में नहीं है। और जो कोल पुत्र वंसी परम्परा के पुजारी हैं, वे सही हैं। भ्रम में नहीं हैं। इसी तरह के सही ज्ञान के द्वारा, पुस्त-दर-पुस्त के पुत्रों के सिलसिले में अपने पूर्वज बीज रूपों के साथ प्रथम बीज रूप का (याने पित्तर आत्माओं के साथ प्रथम आत्मा, परमात्मा का) जो अराधना करते हैं, वही पुत्र कुलाचारी हैं। और बीज रूपों के सही स्मरणों के पूजारी हैं।

बीज रुप एक आत्मा, अपने को विस्तार करने के क्रम में कई अंश रूपों में प्रगट हुए थे। और प्रगट होते हैं। लोगों के बीच जिन्दगी का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए वे विशेष अंश रूपों में प्रगट होते रहते हैं। जिन पूर्वजों ने परमात्मा के असली मूल रूप का ज्ञान पुस्त-दर-पस्त के पुत्रों में नही, उतारा, वैसे ही अज्ञानी, सिलसिला विहोन पुत्रों ने परमात्मा के ज्ञान के स्थान पर, अंश रुपों के ज्ञान पर ही निर्भर किया, और

उनसे उत्तन्न पुत्र अंश रूपों के ज्ञान पर ही निभर करते जा रहे हैं।

नतीजा यह हुआ कि मूल रुप के आचार एवं मूल रुप के धर्म के स्थान पर, विभिन्न अंश रूपों के विभिन्न आचारों पर आधारित विभिन्न धर्मों का प्रारम्भ हुआ, जो अभी प्रचलित है। इसके अलावे उन अंश रूपों के नाम के ग्रन्थ बने, जो उन अंश रुपों के जिन्दगी का जीवनी है। उन अंश रुपों का स्तुति है। और उन्हे पृथक बनाने के प्रयास में पृथक-पृथक रीति रिवाजें बने। प्रार्थना एव पूजा करने के पृथक विधियां बने।

इन सब अन्तरों के अलावे कुलाचार के साथ अन्य आचारों में और कोई अन्तर नहीं है।

किन्तु कुलाचार कितना प्रभावशाली है, और अन्य आचारे कितना प्रभावशाली है, कुलाचार कितना प्रत्यक्ष फलदायक है, और अन्य आचारें कितना प्रत्यक्ष फलदायक हैं, इसका अन्तर तो कुलाचारी बनकर ही अनुभव किया जा सकता है।

अतः हे, आदिवासियों ! हे, गैर-आदिवासियों !—तब यहां खुद, आप ही विचार कर सकते हैं कि, सम्भ्रान्त (confused) एवं अनभिज्ञ (foolish) पूजा का क्या-फल हो सकता है ?—कुछ नहीं।

एक पुत्र के, एक पिता के, एक वंश के पित्तरों के, एक कुल के, पित्तर महानों के, साथ दैविक कुल के कुलेश्वरी एवं कुलेश्वर का चिन्तन, पूजा एवं अर्पण जितना सीधा है, वैसा

अन्य आचारों में नहीं है ।

और वैसे एम सीध के चिन्तन, पूजा एवं अर्पण का दैविक फल जितना प्रत्यक्ष और तत्काल है, वैसा अन्य आचारों का नहीं है ।

—लेखक

— : —

The unique literature "Kulachra" is the result of my greatest anxiety what will be after Death ? Is there a total End or a Continuity ? If is also the result of my greatest curiousity.

I have seen this visible world.

Can I see that invisible world ?

Can I see both worlds together ?

If the same type of anxiety and curiousity can arise in your mind ? advise you to go through Kulachara under purest conditions, with meditation.

आत्म सम्मान

दूसरे लोग आपको यह सिखाते हैं, कि आप फलां पैगम्बर को, फलां अवतारी को, फलां ईश्वर-पुत्र को मानिए। उनके लचकदार बातों में आकर वैसे मानने वालों के गिरोह में जब आप शामिल हो जाते हैं, तो आप भी कहने लगते हैं, कि

हमलोग तो फलां पैगम्बर को, फलां अवतारी को, फलां ईश्वर-पुत्र को ही मानते हैं, दूसरे को नहीं मानते हैं ।

वैसी बातों को सुनकर मुझे आश्चर्य चकित होता पड़ता है। फिर दूर तक सोचना भी पड़ता हैकि आप दूसरे के विचारसे दूसरे को मानने लगते हैं। दूसरे को अपनाने लगते हैं । मगर अपने ही विचारों से अपने को नहीं मानते हैं । फिर अपने को मानते हुए, अपने माता-पिता को, एवं अपने जन्म के सिलसिले के पित्तर महानों को नहीं मानते हैं । नहीं अपनाते हैं । क्या ही गजब का आपका निर्णय है ।

क्यों नहीं मानते हैं ? अपने को नहीं मानने, अपने निज सम्बन्धियों को नहीं मानने, अपितु दूसरे को ही मानने का क्या कारण हो सकता है ? क्या आप अपने को अपने से मानने लायक नहीं है ? भला पैगम्बर, अवतारी, ईश्वर-पुत्र आपसे भिन्न दूसरे ही तो हैं ।

मुझे ऐसा लगता है, कि अपने ही बातों के मामले में भी आप दूसरों पर आश्रित होना चाहते हैं । पर सही में कहा जाए तो आश्रित किनको होना चाहिए ? उसी को होना चाहिए जो निपंगु हैं । पर आपका तो शरीर सब तरह से ठीक है ; फिर भी आश्रित होना चाहते हैं । इसका माने यही है कि, आप, शरीर के अच्छा रहते हुए भी, मन एवं बुद्धि के निपंगु हैं । आत्म सम्मान के निपंगु हैं । इसके अलावे तो दूसरा कारण दिखाई नहीं देता है ।

दूसरे अक्सर यह प्रचार करते हैं, कि उनको मानने से वे आपका दुःख दूर करेंगे । आपको धन दौलत देंगे । उनको

मानने से वे, आपका पाप क्षमा करेंगे। आपके गन्दा हृदय को धोएगें। आपको स्वर्ग में अपने पास स्थान देंगे। और स्तर्ग में स्थान पाकर आप हमेशा के लिये सुख पायेंगे।

यही सोचने की बात हे कि, आप में, केवल मानने मात्र से, कौन सी ऐसी खासियत की वृद्धि हो जायेगी जो आपके प्रति वे इतना ज्यादा, एक साथ, मेहरबानी करने लगेंगे। ये सब उनका मात्र झूठा शान्तवना है। वे आपका सेवक मानने मात्र से कैसे बन सकते हैं। आपने उनको कुछ भी भोग अर्पण किया हीं नहीं। वे मानने मात्र से मुफ्त के आपके सेवक कैसे बन सकते हैं ? जरा आप अपने बारे मैं तो सोच कर देखिए। क्या किसी के मानने मात्र से, उनके, आप मुफ्त के सेवक बन जायेंगे।

अपने चंगुल में लाने के लिये वे प्रथम में कुछ प्रलोभन देते हैं। नौकरी का प्रलोभन, आर्थिक मदद का प्रलोभन देते हैं। ये सब उनका एक तरीका है। उस प्रलोभन के फन्दे में, अगर आप फंस भी गए तो असली में वहां पाते क्या हैं ? दूसरे लोग जो आपसे पहले फंस चूके हैं, वे भी असली में पाए क्या हैं ? उन्हें कुछ भी तो काया पलट देखने को नहीं मिले है। जीने खाने के लिये माकूल तलब पर कोई नौकरी मिली। पर नौकरी के समाप्त होने के बाद तो फिर वही हालत। वरन पहले से भी कहीं बदतर हालत ही तो देखने को मिलते हैं। पहले की निराशा की अपेक्षा कहीं अधिक निराशा ही तो है देखने को मिलते हैं। मात्र एक धोखा। मात्र खोखलापन।

बाद में पछताते हुये चुपके से, यही शिकायत करते हैं, कि उनके (प्रचारक के) तो अपने संस्था में शामिल करने मात्र के लिए ही प्रेम की जाती हैं। संस्था के पंजी में नाम लिखाने मात्र के लिए ही तो वे निकट से अपने बनते हैं। मतलब सिद्ध होने के बाद कौन पूछता है। वही पुराने चाल पर ही छोड़ देते हैं।

किन्तु आपके बहकावे के, उतनी थोड़ी सी प्रयास के कारण, उनके संस्था को कितना फायदा हो जाता है, क्या आपने कभी आँकने की कोशिश किया है ?

संस्था में शामिल होने के कुछ महीनों के बाद से ही वे आपसे तरह तरह के चन्दा वसूलने लगते हैं। वरन यह कहिए कि वे आपसे धार्मिक मालगुजारी ही वसूलने लग जाते हैं। आप मजबूरन देते जाते हैं। धर्म के नाम पर जिन्दगी भर देते जाते हैं। शुरु में आपके लिए उनकी थोड़ी सी पूंजी लगी थी। फिर हिसाब लगाईये इस पूंजी का उनको कितना लाभ मिलते जायेगा ?

क्या इस धार्मिक मालगुजारी का कोई अंत भी है ? नहीं, कभी नहीं। यह तो शुरू में जो एक बोरा गेहूं मिला था। या शुरू में जो एक छोटी नौकरी मिली थी उसका सूद-दर-सूद है। इसलिए यह तो पिता के बाद पुत्रों एवं पुत्रियों को लगातार देने होते हैं। कभी अन्त होने वाला नहीं है। एक गैर-फायदा तो यह मिला।

इसके बाद फिर पाते हैं. कि अरे यह संस्था तो बिलकुल

खोखला है । अरे इसके धार्मिक ग्रन्थ में तो कुछ नहीं है । केवल कहानियो का ही सग्रह है ।

फिर पाते हैं कि इसमें तो जिन्दगी बिलकुल सिठा (powerless) है । और इसमें तो किसी घरेलू काम के लिए, सामाजिक काम के लिए भी कोई बिलकुल स्वतंत्र नही है, लड़की की शादी करनी होती है तो एक मुस्त रकम पहले ही संस्था में जमा करना होता है । शादी होने के पहले लड़की को गरीबों के लिए, कम से कम आठ दिनों तक संस्था के मुख्यालय में गुप्त धार्मिक शिक्षा लेनी होती है । और धनी वर्गों के लिए तो लड़की के जवानी प्राप्त होने पर, एक साल तक संस्था के मुख्यालय में गुप्त धार्मिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है । अरे इससे तो लड़की का कुमारीपन (virginity) ही समाप्त होने जैसा मालूम पड़ता हैं । कितना निन्दनीय है ? कितना शर्मनाक है ? अपने लिए एक कुमारी लड़की को पत्नी के रूप में प्राप्त करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है । खास अपने वीर्य का प्रथम पुत्र या पुत्री पैदा करने के लिए भी स्वतंत्र नही है । कितना गन्दा वातावरण है ? ये दूसरा-तीसरा गैरफायदा देखने को मिलते हैं ।

फिर पारिवारिक जिन्दगी के सू-मधुर सम्बन्धों का मिलान कीजिए । अरे इस घर के इस परिवार में तो बिलकुल स्वक्छन्द व्यवहार होते हैं । पति या पत्नि के बीच के ही स्वक्छन्द व्यवहार है । क्योंकि पत्नी के लिए पत्नी बनने के पहले ही गुप्त धार्मिक शिक्षा, सूमधुर सम्बन्धों में एक अन्दरूनी

रूकावट बनती है । बुरी आदत एक बार जब संस्था में बन जाती है तो उसे जल्दी भुलाया भी नही जाता है । अतः व शरीर से निकट होकर भी निकट नही है । आत्मा से निकट होने की बात तो बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए । पत्नि कभी पति के पूजारिन बन नहीं सकती है ।

वैसी हालत में मात्र शरीरों के सम्पर्कों से जो बच्चे पैदा होते भी हैं वे भी बिलकुल स्वच्छन्द व्यवहार करने लगते हैं । मानो माता-पिता के लिए वे पुत्र पुत्री ही नही है । या पुत्र पुत्री के लिए माता पिता ही नही है !

यहां तो परिवार में गजब का ही वातावरण है ।

संस्था के ढांचे में जब पारिवारिक सुख का आनन्द नही है । धर्म का एवं धार्मिक पुस्तक का आनन्द नही है तो स्वर्ग सुख का आनन्द कैसा होगा ? सोचने की बात है ।

क्योंकि यहां परिवार में आपसी परिचय जब पक्का नहीं है तो फिर स्वर्ग में तो ठीक वैसी स्थिति ही हो सकती है, जैसा कि एक मेला की स्थिति हो सकती है या नही तो ठीक वैसी ही स्थिति हो सकती है, जैसा कि एक केन्द्रीय जेल की स्थिति हो सकती है । यहां कौन किनका अपना है । सभी अपरिचित ही अपरिचित है । फिर अपरिचितों के बीच स्वर्ग का सुख मिलता भी होगा तो कैसे अच्छा लगता होगा ? सोचने की बात है ।

जो ऐसी दुर्गतियों को बरदास्त कर सकता है, उसके लिए तो वैसी संस्थाओं के गन्दी वातावरणों में जिन्दगी निभाना ही अच्छा है क्योंकि जो मन एवं बुद्धि के पंगु हैं, वे तो मृत्यु के बिना ही मूर्दा हैं ।

लेकिन सब तरह से सबसे अधिक तज्जुब इसी बात की होती है, कि धर्म के प्रचारक, कभी यह नहीं कहते हैं कि उनके पैगम्बर अवतारी या ईश्वर पुत्र को मानने से, मानने वाले को, वे अकाल मृत्यु से बचा लेगें। जो निः संतान है उनको सन्तान देगें।

बेचारे प्रचारक यह बात कह नहीं सकते हैं। क्योंकि इस तरह के प्रचार के नतीजे तो शीघ्र ही परीक्षा किये जा सकते हैं। किसी भी समय परीक्षा किए जा सकते हैं। बेचारे झूठा बनने के लिये क्यों ऐसा कहते ?

अरे ! किन्हीं के बहकावे में आकर, किन्हीं को मानकर जब हमे फायदा लेना ही है, तो छोटे-छोटे फायदे क्यों लेते ? जब भी फायदा लेना होता तो सबसे बड़ा, सबसे असम्भव को सम्भव कर सकने वाला फायदा लेते।

लेकिन आप भी कितना सस्ता माल हैं, बहुत सस्ता पट जाते हैं। बेचारे प्रचारक की खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। क्योंकि उनको तो अकेला ही रहकर मौज मारना है।

जब आप जाड़े में ठिठुरते होंगे, जब आप जलती धूप में झूलसते होंगे, जब आप भूखे परेशान होंगे, तब वे अच्छे बंगले में अच्छे भोजन का स्वाद चखते होंगे। और फिर गुप्त धार्मिक प्रशिक्षण में आए नव युवतियों के साथ रंगरेलियां करते होंगे। जब आप पैदल हीठते होंगे, तब वे फटफटिया पर सवार फूर से उड़ते रहे होंगे।

ये सब उनका सारा कमाल, उन्हीं रूपयों का कमाल है, जिसे आपने चन्दा के रुप में धार्मिक मालगुजारी दिया है।

.....

कोई धार्मिक संस्था के कोई धार्मिक गुरू, यह सुनिश्चित (guaranty) करे या नहीं करे, पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि किसी के अकाल मत्यु को रोका जा सकता है ! संतानहीन को संतानलाभ हो सकता है। और यह कमाल बिना पैगम्बर, अवतारी एवं ईश्वर-पुत्र के ही किया जा सकता है। यह कमाल खुद आपके द्वारा किया जा सकता है। अपने लिए अपने परिवार के लाभ के लिए खास आपके द्वारा किया जा सकता है।

वशर्ते कि आप धार्मिक बाजारों के समूचे भ्रम को झाड़कर, अपने विचार से, अपने दृढ़ निश्चय से, अपने को ही माने, अपने से आगे, अपने को, मानते हुए अपने पिता को ही माने और अपने पिता से आगे अपने वंश के पिताओं के सिलसिले में पित्तरों को ही मानें और उन सबके आगे परमपिता को ही मानें।

मैं बिश्वास दिलाता हूं कि आप में सृष्टि की सारी दविक शक्तियां (Divine powers) है। जिन्हे अपनेको मानकर आपको मात्र जागृत करने की आवश्यकता है। और उसे, केवल, आपको अनुभव करने की आवश्यकता है।

सोचिए तो—यह कितनी वाहियात बात है, कि हम, अपनेको नहीं मानें दूसरेके बहकावे में दूसरे किसी गैर को माने।

अपने को मानना, अपने शरीर के तेज (glaze) को मानना है। अपने माता-पिता को मानना, अपने जन्म के दैविक श्रोत को मानना है। अपने जन्म के श्रोत को मानना अपने वंश एवं कुल के संचालन कर्त्ता ईश्वर को मानना है। और अपना ही जन्म सिलसिला को मानना अपना ही कुलाचार करना है।

अपने जन्म के श्रोत, अपने जन्म के सिलसिले में ही सभी केजन्मों का परम श्रोत परमेश्वर है। जब हम अपना जन्म के पवित्र श्रोत से ईश्वर से ही सम्बन्धित हो सकते हैं तो ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के एवं ईश्वर की कृपा पाने के सीधे धार (direct flow) से सम्बन्धित हो जाते हैं। जब ईश्वर की कृपा ही हमको हासिल है, तो अपने को, अपने परिवारों को एवं अपने पड़ोसी को अकाल मृत्यु से बचाना कौन सा भारी बात है? और अपने परिवार में देव जैसा (diamond Son) पुत्र को पैदा करना कौन सा भारी बात है?

इसलिए आत्म प्रतिष्ठा का ख्याल करें। आत्म प्रतिष्ठता के जैसा संसार में कोई प्रतिष्ठा नहीं है। अतः

अपनी ही बात पर अपने को मानिए।
दूसरे की बात पर दूसरे को मत मानिए॥
अपने से आगे अपने पिता को मानिए।
दूसरे की बात पर दूसरे को मत मानिए॥
पिता के आगे पित्तर महानों को मानिए।
दूसरे की बात पर दूसरे को मत मानिए॥
पित्तरों के आगे परमपिता को मानिए।
दूसरे की बात पर दूसरे को मत मानिए॥

—लेखक

सच्ची शिक्षा

यह बात है केवल एक विश्वास की।
अपने दिल में केवल एक तसल्ली की॥१॥

कृष्ण कहो या क्रीस्त कहो, ये मान की।
राम कहो या रहिम कहो, ये नाम की॥२॥

मूर्ति बनाओ; या चित्र मढ़ाओ उनकी।
ये केवल है भ्रम तेरा नाम और रूप की॥३॥

अन्तर नहीं है, उनमे अन्तर्विष्ठ रूह की।
वे दिखाते हैं खुद को, लेकर पर्दा शरीर की॥४॥

जो भेद समझते हैं, अभी इस बात को।
उनको क्या चिन्ता है, कभी किसी बात की॥५॥

समय न बर्बाद करो करके उठ बैठकी।
वे किसी कदर हो नहीं सकते आपकी॥६॥

क्या जी, क्यों कहते हो जात कौम की?
क्या रूह हो सकती किसी कौम की??७॥

अकेले आए हो, नौबत है फिर जाने की।
खूबत नहीं है, किसी के रोकने की॥८॥

तब पूछो, जात कौम है किस काम की?
ये तो चालें हैं, केवल आपको चूसने की॥९॥

परिवार सहित कोशिश करो सटने की।
लेकर सहारा सबके हित में कुलाचार की॥१०॥

समझकर, सब कुछ है, यहां ईश्वर की।
भूल कर मैली भिन्नताओंको अपने दिलकी॥११॥

यह बात मान लो, रामो के जूबान की।
जो जानता है, बात सत्य और निर्मल की॥१२॥

तू लाख यत्न करो. जिन्दगी भर की ।
पवित्रता के बिना सब कुछ है बेकार की ॥१२॥

नोट—वे-से मतलब, परमजीव ।
वे-से मतलब, अवतारी के नाम का सम्बोधन ।

— : —

अमूल्य शिक्षा

अपने कुल के पिता गुरू बने ।
और पुत्र सयाना चेला बने ॥

ऐसा ही कुल का सिलसिला बने ।
गुरू चेला का पीढ़ी-दर-पीढ़ी बने ॥

जिसमें पित्तर ईष्ठ देवता बने ।
और शिव जी ज्येष्ठ पित्तर बने ॥

अधिष्ठानीं पित्तर ईश्वर बने ।
नीचे से उपर तक वैसी सीढ़ी बने ॥

कुल से जाने, कुल में ही आने ।
के पुनर्जन्म का एक कुल चक्र बने ॥

ऐसा सुन्दर जीवन को पनपाने ।
सिखाया न कभी किसी धर्म ने ॥

—लेखक

— : —

इसके आगे भाग ४ में पढ़ें ।

कुलाचार

(भाग तीन)

★

लेखक

रामो बिरूआ

बिहार असैनिक सेवा

ग्राम- भागाविला

जिला- सिंहभूम (बिहार)

★

प्रथम संस्करण-१९८०-१०००

कॉपीराइट-लेखक

मूल्य-५ रू०

★

मुद्रक

एसपी प्रिन्टर्स

आड़त रोड

डालटनगंज-८२२ १०१

फोन : २४६